अध्याय–3

राज्य सभा की सदस्यता

अर्हताएं

संविधान का अनुच्छेद 84 संसद् की सदस्यता के लिए अर्हताएं निर्धारित करता है। न्यूनतम आयु और प्रतिनिधित्व संबंधी अर्हताओं के अलावा ये अर्हताएं दोनों सभाओं के लिए समान हैं। राज्य सभा का सदस्य होने के लिए किसी व्यक्ति के पास निम्नलिखित अर्हताएं होनी चाहिए:

(क) वह भारत का नागरिक हो और निर्वाचन आयोग द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति के समक्ष संविधान की तीसरी अनुसूची में इस प्रयोजन के लिए दिए गए निम्नलिखित प्ररूप के अनुसार शपथ ले या प्रतिज्ञान करे और उस पर हस्ताक्षर करे:

''मैं, अमुक, जो राज्य सभा में स्थान भरने के लिए अभ्यर्थी के रूप में नामनिर्देशित हुआ हूं, ईश्वर की शपथ लेता हूं/सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता हूं कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा और मैं भारत की प्रभुता और अखंडता अक्षुण्ण रखूंगा।''[1]

निर्वाचन आयोग ने निम्नलिखित व्यक्तियों को ऐसे व्यक्तियों के रूप में प्राधिकृत किया है जिनके समक्ष राज्य सभा के लिए निर्वाचन के हेतु कोई अभ्यर्थी शपथ ले सकेगा या प्रतिज्ञान कर सकेगा और उस पर हस्ताक्षर कर सकेगा:

(i) संबंधित निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर/असिस्टेंट रिटर्निंग ऑफिसर);

(ii) सभी वैतनिक प्रेजीडेंसी/प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट;

(iii) सभी जिला न्यायाधीश और किसी राज्य की न्यायिक सेवा के अन्य सभी व्यक्ति;

(iv) जेल अधीक्षक (जहां कोई उम्मीदवार जेल में हो);

(v) नजरबंदी शिविर का कमांडेंट (जहां कोई उम्मीदवार निवारक नजरबंदी के अधीन हो);

(vi) किसी अस्पताल का चिकित्सा अधीक्षक या संबंधित चिकित्सा व्यवसायी (जहां उम्मीदवार बिस्तर से न उठ सकता हो या बीमार हो);

(vii) भारत का राजनयिक या कौंसलीय प्रतिनिधि या उसके द्वारा प्राधिकृत कोई व्यक्ति (जहां उम्मीदवार भारत के बाहर हो); और

(viii) निर्वाचन आयोग के समक्ष इस संबंध में आवेदन किए जाने पर उसके द्वारा नामनिर्देशित कोई व्यक्ति (जहां कोई उम्मीदवार किसी अन्य कारण से संबंधित चुनाव अधिकारी/

सहायक चुनाव अधिकारी के समक्ष उपस्थित होने में असमर्थ हो या उसे ऐसा करने के लिए रोका गया हो)।[2]

(ख) उसकी आयु तीस वर्ष से कम नहीं होगी (नामनिर्देशन की छानबीन करने की तारीख को)।[3]

(ग) उसके पास ऐसी अन्य अर्हताएं होंगी जिन्हें इस संबंध में संसद् द्वारा या उसके द्वारा बनाई गई किसी विधि के अधीन विहित किया जाए।[4]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (1951 का 43) एक और अर्हता निर्धारित करता है कि कोई व्यक्ति जब तक भारत में किसी संसदीय निर्वाचन -क्षेत्र के लिए निर्वाचक नहीं होगा, तब तक वह राज्य सभा में उस राज्य या संघ राज्यक्षेत्र का प्रतिनिधि चुने जाने के लिए योग्य नहीं होगा।[5] लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1950 (1950 का 43) किसी निर्वाचन-क्षेत्र के लिए निर्वाचक नामावली में पंजीकरण की शर्तें निर्धारित करता है अर्थात् कोई व्यक्ति अर्हता की तारीख को अठारह वर्ष से कम आयु का नहीं होना चाहिए और सामान्यत: उसे एक निर्वाचन-क्षेत्र का निवासी होना चाहिए।[6]

निरर्हताएं

संवैधानिक उपबंध

संसद् के किसी भी सदन की सदस्यता के लिए निरर्हताओं का उल्लेख संविधान के अनुच्छेद 102 में इस प्रकार किया गया है:

(1) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने के लिए अयोग्य होगा—

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का अयोग्य न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है;

(ख) यदि वह विकृतचित्त है और सक्षम न्यायालय की ऐसी घोषणा विद्यमान है;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया है;

(घ) यदि वह भारत का नागरिक नहीं है या उसने किसी विदेशी राज्य की नागरिकता स्वेच्छा से अर्जित कर ली है या वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा या अनुषक्ति को अभिस्वीकार किए हुए है; और

(ङ) यदि वह संसद् द्वारा बनाई गई किसी विधि द्वारा उसके अधीन इस प्रकार अयोग्य कर दिया जाता है।

स्पष्टीकरण–इस खंड के प्रयोजनों के लिए, कोई व्यक्ति केवल इस कारण भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन लाभ का पद धारण करने वाला नहीं समझा जाएगा कि वह संघ का या ऐसे राज्य का मंत्री है।

(2) कोई व्यक्ति संसद् के किसी सदन का सदस्य होने के लिए अयोग्य होगा यदि वह दसवीं अनुसूची के अधीन इस प्रकार अयोग्य हो जाता है।

'लाभ के पद' शब्दों का प्रयोग

उक्त अनुच्छेद के खंड (1) के उपखंड (क) में सरकार के अधीन 'लाभ का पद' शब्दों की परिभाषा संविधान में या संसद् के किसी अन्य कानून में नहीं दी गई है। अत: उसके विस्तार और परिधि का निर्धारण न्यायालयों और अन्य सक्षम प्राधिकरणों द्वारा समय-समय पर दिए गए फैसलों से होता है।[7]

लाभ के पदों संबंधी सभाओं की जो संयुक्त समिति गठित की गई है, वह अन्य बातों के साथ, उन सभी समितियों की संरचना और स्वरूप की जांच करती है, जिनकी सदस्यता संविधान के अनुच्छेद 102 के अधीन किसी व्यक्ति को संसद्-सदस्य के रूप में चुने जाने या संसद्-सदस्य होने के लिए अयोग्य कर सकती है तथा यह संयुक्त समिति 'लाभ का पद' संबंधी सभी मामलों की जांच करती है। यह समिति इस बात का निर्धारण करने के लिए कि क्या किसी पद के कारण उसके धारक को संसद् सदस्य चुने जाने या संसद् सदस्य होने के लिए अयोग्य किया जाए या नहीं, सामान्यत: निम्नलिखित मानदंडों का अनुसरण करती है:

(i) क्या सरकार पद पर नियुक्त किए जाने और उससे हटाए जाने पर और पद के कार्य-निष्पादन और कृत्यों पर नियंत्रण रखती है;

(ii) क्या धारक संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 की धारा 2(क) में यथा-परिभाषित 'प्रतिपूरक भत्ते' के अतिरिक्त और कोई पारिश्रमिक लेता है;

(iii) क्या वह निकाय, जिसमें कोई पद धारण किया जाता है, कार्यपालक, विधायी या न्यायिक शक्तियों का प्रयोग करता है या निधियों के वितरण, भूमि के आवंटन, लाइसेंसों को जारी करने आदि की शक्तियां प्रदान करता है या नियुक्ति, छात्रवृत्तियां प्रदान करने आदि के संबंध में शक्तियां देता है; और

(iv) क्या वह निकाय, जिसमें कोई पद धारण किया जाता है, धारक को प्रश्रय देने के रूप में प्रभाव या शक्ति का इस्तेमाल करने का सामर्थ्य प्रदान करता है।

यदि उपरोक्त मानदंडों में से किसी का भी उत्तर ''हां'' हो तो संबंधित पद के कारण उसका धारक अयोग्य हो जाता है।[8]

लाभ के पदों के संबंध में सांविधिक अपवाद

(i) *संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 के अधीन*

यद्यपि कोई पद लाभ का पद हो सकता है तथापि संसद् यह घोषित कर सकती है कि उसका धारक अयोग्य नहीं होगा। संसद् (निरर्हता निवारण) अधिनियम, 1959 में उन पदों का उल्लेख है जिनके धारक संसद् की सदस्यता के लिए अयोग्य नहीं होते। संक्षेप में, अधिनियम में यह उपबंध किया गया है कि यदि किसी सांविधिक/असांविधिक निकाय/कंपनी (अधिनियम की अनुसूची में जिनका विनिर्देश किया गया है उन्हें छोड़कर) का सदस्य/निदेशक प्रतिपूरक भत्ते के अतिरिक्त किसी अन्य पारिश्रमिक का हकदार नहीं है तो वह अयोग्य नहीं होगा। ''प्रतिपूरक भत्ते'' की परिभाषा है : वह धनराशि जो किसी पद के धारक को दैनिक भत्ते के रूप में दी जाती है और जो संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अधीन किसी संसद्-सदस्य को प्राप्त दैनिक भत्ते से अधिक नहीं होती, और उसके द्वारा उस लाभ के पद के कृत्यों के निर्वहन के लिए किए गए व्यय की प्रतिपूर्ति के हेतु कोई वाहन भत्ता,

मकान किराया भत्ता या यात्रा भत्ता। अधिनियम में विनिर्दिष्ट रूप से निम्नलिखित व्यक्तियों द्वारा धारित पदों को अपवर्जित किया गया है:

(क) संघ या किसी राज्य का मंत्री, राज्य मंत्री या उप मंत्री, चाहे वह पदेन हो या नाम से हो; (ख) संसद् में विपक्ष का नेता; (ग) योजना आयोग का उपाध्यक्ष; (घ) संसद् में मुख्य सचेतक/उप-मुख्य सचेतक, सचेतक या संसदीय सचिव; (ङ) राष्ट्रीय अल्पसंख्यक आयोग, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति आयोग, राष्ट्रीय महिला आयोग का अध्यक्ष; (च) नेशनल केडेट कोर, प्रादेशिक सेना या आरक्षित तथा सहायक वायु सेना या होम गार्ड का सदस्य; (छ) मुम्बई, कलकत्ता या मद्रास का शेरिफ; (ज) किसी विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय से संबंधित किसी निकाय के सिंडीकेट, सीनेट, कार्यपालक समिति, परिषद् या सभा (कोर्ट) का अध्यक्ष या सदस्य; (झ) सरकार द्वारा किसी विशेष प्रयोजन के लिए भारत के बाहर भेजे गए किसी शिष्टमंडल या मिशन का सदस्य; (ञ) किसी ऐसी समिति का अध्यक्ष या सदस्य जो सार्वजनिक महत्त्व के किसी विषय पर सरकार को सलाह देने के लिए अस्थायी रूप से गठित की गई हो और (ट) गांवों के राजस्व अधिकारी जो भू-राजस्व एकत्र करते हैं और एकत्र राशि में से अंश या कमीशन प्राप्त करते हैं।

संसद् अपने विवेकानुसार ऐसा कानून अधिनियमित करने में सक्षम है जिससे भूतलक्षी प्रभाव से निरर्हता समाप्त हो जाती है[9] या कोई पद निरर्हता से मुक्त हो जाता है।[10]

(ii) ***अन्य संविधियों के अधीन***

उपरोक्त पदों के अलावा, विशिष्ट अधिनियमों में घोषणात्मक खंडों के द्वारा इस आशय के ऐसे विशिष्ट उपबंध भी किए जाते हैं कि उनके अधीन सृजित पद निरर्हता के प्रयोजन के लिए ''लाभ के पद'' नहीं समझे जाएंगे।

> कॉफी अधिनियम, 1942,[11] रबड़ अधिनियम, 1947,[12] चाय अधिनियम, 1953,[13] तम्बाकू बोर्ड अधिनियम, 1975,[14] मसाला बोर्ड अधिनियम , 1986[15] में घोषणा की गई है कि संबंधित अधिनियमों के अधीन गठित बोर्ड के सदस्य का पद उसके धारक को संसद् का सदस्य चुने जाने या सदस्य होने के लिए अयोग्य नहीं करेगा।
>
> वक्फ अधिनियम, 1995 घोषित करता है कि किसी वक्फ बोर्ड के अध्यक्ष अथवा सदस्यों के पद धारक संसद्-सदस्य चुने जाने या संसद्-सदस्य होने के लिए अयोग्य नहीं किए जाएंगे और कभी भी अयोग्य नहीं समझे जाएंगे।[16]
>
> प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978 घोषित करता है कि उस अधिनियम के अधीन गठित परिषद् के सदस्य का पद उसके धारक को संसद् के किसी सदन का सदस्य चुने जाने का सदस्य होने के लिए अयोग्य नहीं करेगा।[17]

अतिरिक्त सांविधिक निरर्हताएं

अनुच्छेद 102 (1) का उपखंड (क) संसद् को यह घोषित करने की शक्ति प्रदान करता है कि कतिपय पद, जो लाभ के पद हैं, उनके धारक को संसद् की सदस्यता के लिए अयोग्य नहीं करेंगे किंतु उसके उप-खंड (ङ) के द्वारा संसद् को यह शक्ति प्रदान की गई है कि वह अन्य विधि के माध्यम से उप-खंड (क) से (घ) में विनिर्दिष्ट निरर्हताओं से भिन्न निरर्हताओं के आधार को बताए। निर्वाचन विधि में कतिपय अन्य निरर्हताओं का उल्लेख किया है। मोटे तौर पर ये इस प्रकार हैं:

(i) भारतीय दंड संहिता और सिविल अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1955 की कतिपय धाराओं, सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 (धारा 11), विधि-विरुद्ध गतिविधियां (निवारण)

अधिनियम, 1967 (धारा 10-12), विदेशी मुद्रा (विनियमन) अधिनियम, 1973, स्वापक औषधि और मन: प्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985, आतंकवादी और विध्वंसकारी क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम, 1987 (धारा 3), धार्मिक संस्था (दुरुपयोग निवारण) अधिनियम, 1988 (धारा 7), लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 (125, 135, 135क, 136(2)(क), पूजा स्थल (विशेष प्रावधान) अधिनियम, 1991 (धारा 6) अथवा राष्ट्र गौरव अपमान निवारण अधिनियम, 1971 (धारा 2 और 3) के अधीन दंडनीय किसी अपराध का सिद्धदोष व्यक्ति दोषसिद्धि की तारीख से छह वर्ष की कालावधि के लिए अयोग्य होगा।[18]

(ii) जमाखोरी और मुनाफाखोरी या खाद्य या औषधियों के अपमिश्रण के निवारण या दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 या सती कराना (निवारण) अधिनियम, 1987 के बारे में उपबंध करने वाली किसी विधि के उल्लंघन के लिए, सिद्धदोष ठहराए गए और छह मास से अन्यून कारावास से दंडित व्यक्ति ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से अयोग्य होगा और अपनी रिहाई से छह वर्ष की अतिरिक्त कालावधि के लिए अयोग्य बना रहेगा।[19]

(iii) उपरोक्त अपराधों के अतिरिक्त किसी अन्य अपराध के लिए सिद्धदोष ठहराए गए और दो वर्ष से अन्यून कारावास से दंडित व्यक्ति ऐसी दोषसिद्धि की तारीख से और अपनी रिहाई से छह वर्ष की अतिरिक्त कालावधि के लिए अयोग्य होगा।[20]

यदि इस प्रकार सिद्धदोष ठहराया गया व्यक्ति संसद्-सदस्य है तो निरर्हता तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक दोषसिद्धि की तारीख से तीन मास न बीत गए हों, अथवा, यदि उस कालावधि के भीतर उस दोषसिद्धि या दंडादेश की बाबत अपील या पुनरीक्षण के लिए आवेदन किया गया है तो जब तक न्यायालय द्वारा उस अपील या आवेदन का निपटारा न किया गया हो।[21]

(iv) निर्वाचन विधि के संगत उपबंधों के अधीन भ्रष्ट आचरण का दोषी व्यक्ति, यदि राष्ट्रपति ऐसा विनिश्चय करे, ऐसी अवधि के लिए अयोग्य हो जाएगा जिसे राष्ट्रपति निर्धारित करे किन्तु यह कालावधि आदेश की तारीख से छह वर्ष से अधिक नहीं होगी।[22]

(v) वह व्यक्ति जो भारत सरकार के अधीन या किसी राज्य सरकार के अधीन पद धारण करते हुए भ्रष्टाचार के कारण या राज्य के प्रति निष्ठाहीनता के कारण पदच्युत किया गया है, ऐसी पदच्युति की तारीख से पांच वर्ष की कालावधि के लिए अयोग्य होगा।[23]

(vi) ऐसा व्यक्ति जिसने अपने व्यापार या कारोबार के सिलसिले में केन्द्रीय सरकार के साथ वस्तुओं की आपूर्ति के लिए या उस सरकार द्वारा हाथ में लिए गए संकर्मों के निष्पादन के लिए करार किया है, करार के विद्यमान रहने तक अयोग्य रहेगा।[24]

(vii) ऐसा व्यक्ति जो ऐसी कंपनी या निगम (सहकारी सोसाइटी के अलावा) का प्रबंध अभिकर्ता, प्रबंधक या सचिव है जिसकी पूंजी में केन्द्रीय सरकार का पच्चीस प्रतिशत से कम अंश नहीं है, उस पद को धारण करने की अवधि तक अयोग्य रहेगा।[25]

(viii) ऐसा व्यक्ति जिसने बिना किसी अच्छे कारण या औचित्य के अपेक्षित समय के भीतर और अपेक्षित तरीके से चुनाव व्यय का लेखा-जोखा दाखिल नहीं किया है, निर्वाचन आयोग के आदेश की तारीख से तीन वर्ष तक अयोग्य रहेगा।[26]

मणिपुर राज्य का प्रतिनिधित्व करने वाले राज्य सभा के एक आसीन सदस्य ने 1989 में लोक सभा चुनाव लड़ा था। निर्वाचन आयोग ने लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 10क के अधीन जारी किए गए

दिनांक 8 जुलाई, 1991 के अपने आदेश द्वारा (1989 के लोक सभा आम चुनाव में भीतरी (इनर) मणिपुर संसदीय निर्वाचन-क्षेत्र से एक उम्मीदवार के रूप में किए गए चुनाव व्यय का लेखा-जोखा दाखिल करने में विफल रहने के कारण) अन्य व्यक्तियों के साथ इस सदस्य को आदेश की तारीख से 3 वर्ष की अवधि के लिए संसद् के किसी सदन या किसी राज्य के विधान-मंडल के सदस्य के रूप में चुने जाने या सदस्य होने के लिए अयोग्य कर दिया। इसके बाद सदस्य ने अधिनियम की धारा 11 के अधीन निरर्हता रद्द किए जाने या वैकल्पिक रूप से धारा[10क] के अधीन निरर्हता के निराकरण के लिए याचिका दाखिल की। आयोग ने तारीख 20 सितम्बर, 1991 के अपने आदेश द्वारा याचिका को अस्वीकार कर दिया। सदस्य ने निर्वाचन आयोग के आदेश के विरुद्ध दिल्ली उच्च न्यायालय में समावेदन किया। उच्च न्यायालय ने 18 नवम्बर, 1991 के अपने आदेश द्वारा निर्वाचन आयोग के आदेश के क्रियान्वयन पर रोक लगा दी। बाद में सदस्य ने याचिका वापस ले ली और आयोग का मूल आदेश प्रभावी हो गया।[27]

निरर्हता के संबंध में निर्णय

यदि किसी संसद्-सदस्य के निरर्ह हो जाने का प्रश्न उठता है या संसद् के किसी सदन के लिए हुए निर्वाचन में भ्रष्ट आचरण के आधार पर निरर्हता का ऐसा प्रश्न उठता है जिसमें ऐसी निरर्हता का हटाया जाना या कम किया जाना भी शमिल है तो ऐसे प्रश्न राष्ट्रपति को उसके निर्णय के लिए निर्देशित किए जाते हैं जिसका निर्णय इन मामलों में अंतिम होता है। किन्तु राष्ट्रपति द्वारा ऐसे प्रश्न पर निर्णय देने के पहले उसके लिए निर्वाचन आयोग की राय लेना और ऐसी राय के अनुसार कार्य करना अपेक्षित है। अनुच्छेद 103 के अधीन किसी सदस्य की निरर्हता का जो प्रश्न राष्ट्रपति को भेजा जाता है वह निर्वाचन के बाद की निरर्हता अर्थात् किसी सदस्य के संसद् के लिए निर्वाचित होने के बाद हुई निरर्हता पर आधारित होना चाहिये।[28]

दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता

संविधान (बावनवां संशोधन) अधिनियम, 1985 के द्वारा अनुच्छेद 102 में खंड (2) जोड़ा गया। अधिनियम द्वारा संविधान में एक नई अनुसूची (दसवीं अनुसूची) जोड़ी गई जिसमें दल-परिवर्तन के आधार पर कतिपय उपबंध किए गए हैं। अधिनियम 1 मार्च, 1985 से प्रवृत्त हुआ।[29]

दसवीं अनुसूची के अधीन कोई सदस्य निम्नलिखित परिस्थितियों में सभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जाता है:

(i) यदि वह ऐसे किसी राजनैतिक दल का सदस्य है जिसने निर्वाचन के लिए उसे उम्मीदवार बनाया था और वह स्वेच्छा से उसकी सदस्यता छोड़ देता है; अथवा

(ii) यदि वह अपने राजनैतिक दल या उसके द्वारा इस निमित्त प्राधिकृत किसी व्यक्ति या प्राधिकारी की पूर्व अनुज्ञा के बिना उनके निदेशों के विरुद्ध मतदान करता है या मतदान से विरत रहा है और ऐसे मतदान को या मतदान करने से विरत रहने को ऐसे राजनैतिक दल, व्यक्ति या प्राधिकारी ने मतदान या मतदान करने से विरत रहने की तारीख से पन्द्रह दिन के भीतर माफ नहीं किया है;[30] अथवा

(iii) यदि सदन का कोई निर्वाचित सदस्य, जो किसी राजनैतिक दल द्वारा खड़े किए गए उम्मीदवार के रूप में निर्वाचित नहीं हुआ है, अपने निर्वाचन के बाद किसी राजनैतिक दल का सदस्य हो जाता है;[31] अथवा

(iv) यदि कोई नामनिर्देशित सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने (शपथ लेकर या प्रतिज्ञान करके) की

तारीख से छह मास की समाप्ति के पश्चात् किसी राजनैतिक दल में सम्मिलित हो जाता है;[32] यदि वह अपने नामनिर्देशन की तारीख को किसी राजनैतिक दल का सदस्य है तो उसे उसके पश्चात् उस दल का सदस्य समझा जाता है।[33]

अपवाद

किसी राजनैतिक दल के विलय की स्थिति में दल-परिवर्तन के आधार पर निरर्हता लागू नहीं होती।[34] तथापि, संबंधित विधान-दल के दो-तिहाई से अन्यून सदस्यों को इस तरह के विलय के लिए सहमत होना चाहिए।[35]

जहां सदन के किसी सदस्य के मूल राजनैतिक दल का किसी अन्य राजनैतिक दल के साथ विलय हो जाता है और सदस्य दावा करता है कि वह और उसके मूल राजनैतिक दल के कोई अन्य सदस्य ऐसे अन्य राजनैतिक दल के या ऐसे विलय से बने नए राजनैतिक दल के सदस्य बन गए हैं तो ऐसी स्थिति में वह अयोग्य नहीं होगा।[36] ऐसी स्थिति में ऐसे विलय के समय से ऐसे अन्य राजनैतिक दल या नए राजनैतिक दल या समूह को उसका राजनैतिक दल समझा जाएगा।[37] किन्तु, सदस्य के मूल राजनैतिक दल का विलय हुआ है यह तभी समझा जाएगा जब संबंधित विधान-दल के कम से कम दो-तिहाई सदस्य ऐसे विलय के लिए सहमत हो गए हों।[38]

कोई सदस्य जो राज्य सभा का उपसभापति निर्वाचित हुआ है, अयोग्य नहीं होगा यदि वह ऐसे पद पर अपने निर्वाचन के कारण ऐसे राजनैतिक दल की, जिसका वह ऐसे निर्वाचन के ठीक पहले सदस्य था, अपनी सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ देता है और उसके पश्चात् जब तक वह पद धारण किए रहता है तब तक उस राजनैतिक दल में पुनः सम्मिलित नहीं होता है या दूसरे राजनैतिक दल का सदस्य नहीं बनता है या वह उपसभापति न रह जाने के पश्चात् ऐसे राजनैतिक दल में पुनः सम्मिलित हो जाता है।[39]

निरर्हता के संबंध में निर्णय

यदि यह प्रश्न उठता है कि सदन का कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के अंतर्गत निरर्हता से ग्रस्त हो गया है या नहीं तो वह प्रश्न राज्य सभा के सभापति को उसके निर्णय के लिए निर्देशित किया जाता है और उसका निर्णय अंतिम होता है।[40] इस संबंध में सभी कार्यवाहियों के बारे में यह समझा जाएगा कि वे संविधान के अनुच्छेद 122 के अर्थ में संसद् की कार्यवाहियां हैं[41] और किसी न्यायालय को इस अनुसूची के अधीन सदन के किसी सदस्य की निरर्हता से संबंधित किसी विषय के बारे में अधिकारिता नहीं होगी।[42]

तथापि, उच्चतम न्यायालय ने यह निर्णय दिया है:

निरर्हता के लिए एक अतिरिक्त आधार का उपबंध करने और विवादग्रस्त निरर्हताओं के न्याय-निर्णयन के लिए दसवीं अनुसूची कोई ऐसे संवैधानिक क्षेत्र का सृजन नहीं करना चाहती जो न्यायालयों के अधीन नहीं हो। ऐसे विवादों का निपटारा करने के लिए अध्यक्ष या सभापति को जो शक्ति दी गई है वह न्यायिक शक्ति है।

दसवीं अनुसूची का पैरा 6(1) वहां तक विधिमान्य है जहां तक वह अध्यक्षों/सभापतियों के निर्णय को अन्तिमता प्रदान करना चाहता है। किन्तु पैरा 6(1) में सांविधिक अन्तिमता की जो अवधारणा है वह, जहां तक संवैधानिक आदेशों का उल्लंघन, असद्भाव, प्राकृतिक न्याय के नियमों का पालन न करने का और अनौचित्य का संबंध है, संविधान के अनुच्छेद 136, 226 और 227 के अधीन न्यायिक समीक्षा को न तो कम करती है और न रद्द करती है ।

दसवीं अनुसूची के पैरा 6(2) में जो 'समझे जाने' संबंधी उपबंध है वह संविधान के अनुच्छेद 122(1) और 212(1) के सदृश उन्मुक्ति प्रदान करता है, जैसाकि कार्यवाहियों की विधिमान्यता को प्रक्रिया संबंधी निरी अनियमितताओं से संरक्षित करने के लिए 1965(1) उच्चतम न्यायालय निर्णय 413 में समझा गया है और स्पष्ट किया गया है। समझे जाने संबंधी उपबंध ''यह समझा जाएगा कि वे संसद् की कार्यवाहियां हैं'' या ''किसी राज्य के विधान-मंडल की कार्यवाहियां'' शब्दों को देखते हुए कल्पना के दायरे को तद्नुसार सीमित कर देता है।

अध्यक्ष/सभापति दसवीं अनुसूची के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए या कृत्यों का निर्वहन करते हुए दसवीं अनुसूची के अधीन अधिकारों और बाध्यताओं का न्याय-निर्णय करने वाले न्यायाधिकरण के रूप में कार्य करते हैं और इस हैसियत में उनके निर्णयों की न्यायिक समीक्षा की जा सकती है।

पैरा 6 में अन्तिमता के खंड के कारण न्यायिक समीक्षा के सीमित दायरे को देखते हुए और न्याय-निर्णय की शक्ति के धारक अर्थात् अध्यक्ष/सभापति की संवैधानिक व्याख्या और हैसियत को देखते हुए अध्यक्ष/सभापति द्वारा निर्णय किए जाने से पहले की अवस्था में न्यायिक समीक्षा उपलब्ध नहीं हो सकती और किसी आशंका के होने के आधार पर उस आशंका को रोकने की कार्यवाही करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। कार्यवाहियों की अंतर्वर्ती अवस्था में भी हस्तक्षेप की अनुमति नहीं दी जा सकती। तथापि, कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान जिन मामलों में निरर्हता या निलंबन लागू किया जाता है उन मामलों के संबंध में अपवाद करना होगा और ऐसी निरर्हता या निलंबन के गंभीर, तात्कालिक और न पलटे जा सकने वाले प्रभाव और परिणाम होने की संभावना है।

यह दावा करना अनुचित होगा कि दसवीं अनुसूची में अध्यक्ष या सभापति द्वारा निर्धारण करने की अधिकारिता न्यायिक शक्ति नहीं है और ऐसे विधायी क्षेत्र के भीतर है जिसके बारे में न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जा सकता। वास्तव में पैरा 6(2) में जो कल्पना है वह उसे अनुच्छेद 122 या 212 के पहले खंड में, जैसी भी स्थिति हो, रख देती है। पैरा 6(2) में ''संसद् की कार्यवाहियों या किसी राज्य के विधान-मंडल की कार्यवाहियां'' शब्दावली का जो प्रयोग हुआ है, वैसी ही शब्दावली क्रमश: अनुच्छेद 122(1) और 212(1) में हैं। इससे मात्र प्रक्रिया संबंधी अनियमितताओं से उन्मुक्ति प्राप्त होती है। इसके अलावा 1985 में दसवीं अनुसूची के लागू करने के बाद भी संविधान ने अनुच्छेद 19(1) और 102(1) के अधीन सदस्यों की निरर्हता से संबंधित विवादों के निपटारे के संदर्भ में अनुच्छेद 122 या 212 का सहारा लेने का इरादा नहीं दिखाया। केवल 'समझे जाने' के उपबंध से ही यह अर्थ निकलता है कि वास्तव में निरर्हता की कार्यवाहियां सभा के समक्ष नहीं हैं बल्कि विशिष्ट रूप से निर्दिष्ट एक प्राधिकारी के रूप में सिर्फ अध्यक्ष के समक्ष हैं। पैरा 6(1) के अंतर्गत जो निर्णय हैं वे सभा के निर्णय नहीं हैं और सभा द्वारा उनका अनुमोदन भी नहीं होता है। यह निर्णय सभा से स्वतंत्र रहकर लागू होता है। किसी 'समझे जाने' संबंधी उपबंध के बनने से ही वह उपबंध अपनी शक्ति से परे नहीं जा सकता। अत: दसवीं अनुसूची के पैरा 6(1) के अधीन शक्तियों का प्रयोग करते हुए अध्यक्ष या सभापति द्वारा जो निर्णय लिया जाता है उसे अनुच्छेद 122 और 212 के अधीन न्यायिक छानबीन से मुक्त नहीं रखा जा सकता।[43]

दसवीं अनुसूची के अधीन बनाए गए नियम

राज्य सभा के सभापति ने दसवीं अनुसूची के अनुसार[44] राज्य सभा सदस्य (दल -परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985 बनाए हैं।[45] ये नियम, 16 दिसम्बर, 1985 को राज्य सभा के सभा पटल पर रखे गए थे और पटल पर रखे जाने की तीस दिन की कुल अवधि (136वें सत्र के दौरान 4 दिन और 137वें सत्र के दौरान 26 दिन) के बाद 18 मार्च, 1986 को प्रवृत्त हुए थे।[46] उन्हें तारीख 18 मार्च, 1986 के भारत के असाधारण राजपत्र और राज्य सभा संसदीय समाचार में अधिसूचित किया गया था।[47] नियमों के मुख्य उपबंध इस प्रकार हैं—

सूचना प्रदान करना और उसका प्रकाशन

प्रत्येक विधान-मंडलीय दल के नेता के लिए यह आवश्यक है कि वह सभापति को एक विवरण दे जिसमें उसके दल के सदस्यों के नाम तथा अन्य ब्यौरे दिए गए हों।[48] यह विवरण नियमों के आरंभ के तीस दिनों के भीतर या जहां दल का गठन ऐसे आरंभ के बाद में हुआ हो उसके गठन के तीस दिनों के भीतर

दे दिया जाना चाहिए।[49] यह एक-सदस्यीय विधान-मंडलीय दल पर भी लागू होता है।[50] जो सूचना दी जा चुकी हो उसमें परिवर्तन के बारे में[51] और निदेश के विरुद्ध मतदान करने या मतदान से विरत रहने को माफ किए जाने या न किए जाने के बारे में सूचना देना आवश्यक है।[52] प्रत्येक सदस्य के लिए विहित प्रपत्र पर अपेक्षित सूचना देना आवश्यक है।[53] सदस्यों द्वारा दी गई सूचना के सारांश को राज्य सभा संसदीय समाचार में प्रकाशित करना आवश्यक है।[54]

याचिका द्वारा किसी प्रश्न का निर्देश

यदि यह प्रश्न उठता है कि क्या दसवीं अनुसूची के अधीन कोई सदस्य निरर्हता से ग्रस्त हो गया है तो उसके प्रति निर्देश केवल सभापति को याचिका देकर ही किया जा सकेगा। यह याचिका लिखित रूप में होनी चाहिए, उसमें ठोस तथ्यों का संक्षिप्त विवरण होना चाहिए, उसके साथ दस्तावेजी साक्ष्य की प्रतियां होनी चाहिए और उसे विधिवत् सत्यापित होना चाहिए।[55]

प्रश्न के संबंध में कार्यवाही की प्रक्रिया

यदि याचिका नियमों के अनुरूप नहीं है तो वह खारिज कर दी जाती है। यदि वह नियमों के अनुरूप है तो वह उसके अनुपत्रों के साथ उस सदस्य को जिसके संबंध में वह दी जाती है, और उसके विधान-मंडलीय दल के नेता को भी (यदि सदस्य किसी विधान-मंडलीय दल का है और नेता स्वयं याचिकादाता नहीं है) निर्धारित अवधि के भीतर टिप्पणियां देने के लिए भेजी जाती है।[56] टिप्पणियों पर विचार करने के पश्चात् सभापति स्वयं प्रश्न पर निर्णय देता है या उसके बारे में राज्य सभा की विशेषाधिकार समिति को निर्देश करता है ताकि समिति उसकी प्रारंभिक जांच करे और उसे प्रतिवेदन दे।[57] यदि सभा का सत्र चल रहा हो तो सभा को एक घोषणा के द्वारा और यदि सत्र नहीं चल रहा हो तो एक संसदीय समाचार द्वारा ऐसे निर्देश की सूचना दी जाती है।[58]

> अक्तूबर, 1989 में प्राप्त एक याचिका का प्रश्न एक ऐसे सदस्य की निरर्हता के बारे में था जिसने संविधान (64वां और 65वां संशोधन) विधेयकों (जो पंचायती राज और नगरपालिकाओं के संबंध में थे) पर अपने राजनैतिक दल के निदेश के विरुद्ध मतदान किया था। याचिका को प्रारंभिक जांच करने और प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपा गया।[59] मामले के समिति में लंबित रहने के दौरान सदस्य और उसके साथ याचिकादाता भी राज्य सभा की सदस्यता से निवृत्त हो गया। किन्तु सदस्य पुनः निर्वाचित हो गया। सभापति का मत था कि जिस सदस्य के संबंध में याचिका दी गई थी उसके सभा का सदस्य न रहने के बाद कार्यवाही का कारण भी समाप्त हो गया। अन्य बातों के साथ यह टिप्पणी की गई:
>
> > पद धारण करने की उस निरर्हता के विपरीत जो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 8क के अधीन भ्रष्ट आचरण के आधार पर होती है और जो छह वर्षों तक के लिए हो सकती है, दल-परिवर्तन के कानून के अधीन किसी सदस्य की निरर्हता उसकी पदावधि की समाप्ति के बाद नहीं रहती। दूसरे शब्दों में, दल-परिवर्तन कानून के अधीन निरर्हता तत्काल हो जाती है और सदस्य के सभा का सदस्य न रहने पर लागू नहीं रहती। इन बातों को देखते हुए, याचिका निष्फल हो गई है। इसके अतिरिक्त यदि समिति इस मामले की जांच करेगी तो भी उसका कोई प्रभाव नहीं होगा क्योंकि सदस्य निवृत्त हो चुका है। ऐसी जांच करना एक निरर्थक प्रयास होगा।
>
> अतः सभापति ने निदेश दिया कि समिति को निर्देश पर आगे कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं है और परिस्थितियों के बदल जाने के कारण इस निर्देश को निष्फल समझा जाना चाहिए।[60]

प्रतिवेदन के प्राप्त होने पर सभापति प्रश्न का निर्धारण करने के लिए उसी प्रकार से कार्यवाही करता है जिस प्रकार वह किसी सदस्य द्वारा सभा के विशेषाधिकार भंग के प्रश्न पर करता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने

के पूर्व कि क्या कोई सदस्य दसवीं अनुसूची के अधीन निरर्हता से ग्रस्त हो गया है, समिति/सभापति द्वारा उस सदस्य को अपना पक्ष प्रस्तुत करने और स्वयं आकर अपनी बात कहने का युक्तियुक्त अवसर दिया जाता है।[61]

इसके पश्चात् सभापति एक लिखित आदेश द्वारा याचिका को खारिज कर देता है या घोषणा करता है कि सदस्य निरर्हता से ग्रस्त हो गया है और वह याचिकादाता को, संबंधित सदस्य को और विधान-मंडलीय दल के नेता को, यदि कोई हो, आदेश की प्रतियां भिजवाता है या अग्रेषित करवाता है। यदि आदेश किसी सदस्य को अयोग्य घोषित करता है तो उसकी सूचना सभा को भी दी जाती है, उसे राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है और निर्वाचन आयोग और केन्द्रीय सरकार को भेजा जाता है।[62]

निर्वाचन

सामान्य प्रक्रिया

राज्य सभा में प्रत्येक राज्य तथा दो संघ राज्य क्षेत्रों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन, यथास्थिति उस राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों द्वारा और उस राज्यक्षेत्र के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा किया जाता है।[63] मत खुले मतदान द्वारा डाले जाते हैं।[63क] जैसाकि उल्लेख किया जा चुका है,[64] दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र का निर्वाचक-मंडल दिल्ली की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है और पांडिचेरी के संघ राज्यक्षेत्र का निर्वाचक-मंडल पांडिचेरी विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है। यदि कोई व्यक्ति, जो किसी निर्वाचक-मंडल का सदस्य है, संसद् के लिए होने वाले निर्वाचनों के संबंध में भ्रष्ट और गैर-कानूनी आचरण और अन्य अपराध से संबंधित किसी कानून के अधीन संसद् की सदस्यता के लिए किसी निरर्हता से ग्रस्त हो जाता है तो वह इस स्थिति में निर्वाचक-मंडल का सदस्य नहीं रहता।[65] किसी निर्वाचक-मंडल के द्वारा किए गए किसी निर्वाचन को सिर्फ इस आधार पर चुनौती नहीं दी जा सकती कि ऐसे निर्वाचक-मंडल की सदस्यता में कोई रिक्ति विद्यमान है।[66]

प्रत्येक दूसरे वर्ष निवृत्त होने वाले सदस्यों के स्थान पर नए सदस्यों को लाने के लिए जो चुनाव होते हैं उन्हें 'द्विवार्षिक चुनाव' कहा जाता है। किसी सदस्य की पदावधि समाप्त होने पर उसके निवृत्त होने से हुई रिक्ति के अलावा हुई रिक्ति के लिए जो चुनाव होते हैं उन्हें ''उप-चुनाव'' कहा जाता है।

अपनी पदावधि के समाप्त होने पर निवृत्त हो रहे राज्य सभा के सदस्यों के स्थानों को भरने के प्रयोजन से राष्ट्रपति ऐसी तारीख या तारीखों को, जिसकी सिफारिश निर्वाचन आयोग द्वारा की जाए, भारत के राजपत्र में एक या अधिक अधिसूचनाओं द्वारा प्रत्येक राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों से या प्रत्येक संघ राज्य क्षेत्र के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों से, जैसी भी स्थिति हो, अपेक्षा करता है कि वे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 और उसके अधीन बनाए गये नियमों और किए गए आदेशों के उपबंधों के अनुसार राज्य सभा के सदस्य निर्वाचित करें। ऐसी कोई अधिसूचना उस तारीख से तीन महीने से अधिक पहले नहीं निकाली जा सकती जिस तारीख को निवृत्त होने वाले सदस्यों की पदावधि समाप्त होनी है।[67] राज्य सभा में किसी स्थान या स्थानों को भरने के लिए निर्वाचन कराने के लिए निर्वाचन आयोग राज्य सरकार से परामर्श करके एक निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर/असिस्टेंट रिटर्निंग ऑफिसर) की नियुक्ति करता है। सामान्यत: राज्य सभा के लिए होने वाले निर्वाचनों के लिए राज्य विधान-मंडलों के सचिवों/अधिकारियों को निर्वाचन अधिकारी/सहायक निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किया जाता है।

एक बार उच्चतम न्यायालय ने राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु चुनाव अधिकारी के रूप में ऐसे व्यक्ति की नियुक्ति के बारे में निर्णय दिया जो किसी राज्य के विधान-मंडल के एक अधिकारी के रूप में कार्य करता था। न्यायालय का कहना था:

यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 187 के अधीन वह राज्य विधान-मंडल के कर्मचारिवृन्द का सदस्य है तथापि वह तब भी उस मोटे अर्थ में सरकार का अधिकारी है जिसमें संविधान के अनुच्छेद 102(1) (क) और अनुच्छेद 191(1)(क) में 'सरकार' शब्द प्रयोग किया गया है। यदि यहां पर प्रयुक्त 'सरकार' शब्द का अर्थ केवल कार्यपालक सरकार समझा जाता है तो उससे संविधान में इन उपबंधों का प्रयोजन ही निष्फल हो जाएगा। इसी प्रकार उसे लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 21 के प्रयोजनों के लिए सरकार का ऐसा अधिकारी मानना होगा जो अधिनियम के अधीन कराए गए किसी निर्वाचन के लिए निर्वाचन अधिकारी के रूप में नियुक्त होने की अर्हता भी रखता है। यह निर्विवाद है कि संविधान के आरंभ के पश्चात् राज्य विधान-मंडलों के सचिवों को लगभग एक नियम के रूप में राज्य सभा के लिए हुए निर्वाचनों के लिए निर्वाचन अधिकारी नियुक्त किया जाता रहा है.... और यद्यपि संसद् ने अधिनियम की धारा 21 में एक बार संशोधन करके स्थानीय प्राधिकरणों के अधिकारियों को विनिर्दिष्ट रूप से शामिल किया है तथापि उसने यह उपयुक्त नहीं समझा है कि निर्वाचन अधिकारियों के रूप में नियुक्त किए जाने की अर्हता न रखने वाले व्यक्तियों में से राज्य विधान-मंडलों के अधिकारियों को स्पष्ट रूप से शामिल करने के लिए इस धारा में समुचित संशोधन किया जाए। संसद् ने हमेशा धारा 21 के प्रयोजनों के लिए राज्य विधान-मंडलों के सचिवों को सरकार के अधिकारियों के रूप में माना है और उनके द्वारा किए जाने वाले कार्य के स्वरूप को देखते हुए ऐसा करना सुविधाजनक पाया है.... हमारा मत है कि संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) और अनुच्छेद 191(1)(क) में जो 'सरकार' शब्द आया है और अधिनियम की धारा 21 में जो 'सरकार का एक अधिकारी' शब्द आए हैं उनकी व्याख्या उदारतापूर्वक की जानी चाहिए ताकि उनके दायरे में विधान-मंडल, कार्यपालिका और न्यायपालिका आ जाएं।[68]

निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन आयोग की पूर्व स्वीकृति से उस स्थान को नियत करता है जहां ऐसे निर्वाचन के लिए मतदान होने वाला हो और वह इस प्रकार नियत किए गए स्थान को अधिसूचित करता है।[69]

उपरोक्त अधिसूचना के जारी होते ही निर्वाचन आयोग एक अधिसूचना द्वारा निम्नलिखित तारीखें नियत करता है:

(क) नामनिर्देशन करने के लिए अन्तिम तारीख, जो प्रथम वर्णित अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख के बाद वाले सातवें दिन की होगी या यदि वह दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन है तो अगले उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो सार्वजनिक अवकाश का दिन नहीं है;

(ख) नामनिर्देशनों की छानबीन की तारीख, जो नामनिर्देशन करने के लिए नियत अन्तिम तारीख के बिल्कुल अगले दिन की होगी या यदि वह दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन है तो अगले उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो सार्वजनिक अवकाश का दिन नहीं है;

(ग) उम्मीदवारियां वापस लेने के लिए नियत अन्तिम तारीख, जो नामनिर्देशनों की छानबीन के लिए तारीख के पश्चात् दूसरे दिन की होगी; यदि वह दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन है, तो अगले उत्तरवर्ती ऐसे दिन की होगी जो सार्वजनिक अवकाश का दिन नहीं है;

(घ) यदि मतदान कराना आवश्यक हो तो मतदान की ऐसी तारीख (तारीखें) जो या जिनमें से पहली तारीख उम्मीदवारियां वापस लेने के लिए नियत अन्तिम तारीख के पश्चात् सातवें दिन के पहले की तारीख नहीं होगी; और

(ङ) वह तारीख जिसके पूर्व निर्वाचन समाप्त कर लिया जाएगा।[70]

उपरोक्त अधिसूचना के जारी होने के बाद निर्वाचन अधिकारी एक सार्वजनिक अधिसूचना द्वारा ऐसे निर्वाचन के लिए उम्मीदवारों के नामनिर्देशनों को आमंत्रित करता है और उस स्थान को भी विनिर्दिष्ट करता है जहां नामनिर्देशन पत्रों को दिया जाना है।[71] ऐसा कोई भी व्यक्ति उम्मीदवार के रूप में नामनिर्देशित किया जा सकता है जो यथास्थिति, संविधान और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 अथवा संघ राज्य-क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 के उपबंधों के अधीन किसी स्थान (सीट) को भरने के लिए योग्य है।[72]

उपरोक्त रूप में नियत तारीख को या उससे पहले (सार्वजनिक अवकाश को छोड़कर) उम्मीदवार को पूर्वाह्न ग्यारह बजे और अपराह्न तीन बजे के बीच निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 के साथ संलग्न प्रपत्र 2ग के रूप में अपने नामनिर्देशन प्रपत्र को भरकर स्वयं या अपने प्रस्थापक (प्रस्तावक) द्वारा निर्वाचन अधिकारी को देना होता है। इस प्रपत्र पर उम्मीदवार द्वारा और यथास्थिति, राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों या संघ राज्यक्षेत्र के निर्वाचक-मंडल के दस प्रतिशत सदस्यों द्वारा या दस संबंधित सदस्यों द्वारा, जो भी कम हों, प्रस्तावकों के रूप में हस्ताक्षर करना आवश्यक है बशर्ते कि कोई व्यक्ति दो से अधिक सीटों को भरने के लिए उम्मीदवार के रूप में नामित नहीं किया जाए।[73] यदि प्रतिशत की इस गणना के फलस्वरूप सदस्यों की संख्या का भाग ऐसा होता है जो आधे से अधिक हो तो उसे एक के रूप में गिना जाता है और यदि वह आधे से कम हो तो उसे गिना नहीं जाता।[74] राज्य सभा के चुनावों की निर्वाचन नामावली राज्य की विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों/निर्वाचक-मंडल के सदस्यों की वह सूची होती है जिसे निर्वाचन अधिकारी विहित प्ररूप में चालू रखता है।[75]

> एक बार उच्चतम न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा कि क्या राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु किसी विधिमान्य नामनिर्देशन के प्रस्थापक (प्रस्तावक) के रूप में कार्य करने का पात्र होने के लिए शपथ लेना/प्रतिज्ञान करना एक पूर्व शर्त है। न्यायालय ने निर्णय दिया कि कोई निर्वाचित सदस्य जिसने शपथ नहीं ली है किन्तु जिसके नाम का उल्लेख लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 73 के अधीन प्रकाशित अधिसूचना में किया गया है वह किसी निर्वाचित सदस्य के सभी गैर-विधायी कार्यकलापों में भाग ले सकता है। वह राज्य सभा के लिए किसी निर्वाचन में मतदान के अधिकार का भी प्रयोग कर सकता है। जैसाकि न्यायालय ने टिप्पणी की:
>
> > जैसाकि कहा जा चुका है, संविधान के अनुच्छेद 193 में निहित नियम यह है कि किसी विधान सभा के लिए निर्वाचित कोई सदस्य शपथ लिए बिना या प्रतिज्ञान किए बिना सभा में उपस्थित नहीं हो सकता और मतदान नहीं कर सकता। संविधान के अनुच्छेद 193 में ''उपस्थित रहने और मत देने'' का अर्थ संविधान के अनुच्छेद 174 के अधीन राज्यपाल द्वारा सदन को ऐसे समय और स्थान पर समवेत होने के लिए आहूत करना है जो वह उचित समझे, और उक्त आह्वान के अनुसार सदन की बैठक कराना है या बैठक स्थगित होने के बाद उसकी बैठक कराना है। एक निर्वाचित सदस्य संविधान के अनुच्छेद 193 का उल्लंघन करने के दंड का भागी तभी होता है जब वह सदन की ऐसी बैठकों में उपस्थित होता है और मतदान करता है। अधिनियम की धारा 73 के उपबंधों के अनुसार सदन के गठन और सदन की पहली बैठक के बीच निरपवाद रूप से एक अंतराल होता है। इस अंतराल के दौरान विधान सभा का निर्वाचित सदस्य, जिसके नाम का उल्लेख अधिनियम की धारा 73 के अधीन जारी की जाने वाली अधिसूचना में होता है, विधान सभा के किसी सदस्य के सभी विशेषाधिकारों, वेतन और भत्ते का हकदार होता है जिनमें राज्य सभा के किसी स्थान को भरने के लिए हुए किसी निर्वाचन में एक निर्वाचक के रूप में कार्य करने का अधिकार भी शामिल है। यह अधिनियम की धारा 73 का प्रभाव है जिसमें कहा गया है कि उसके अधीन अधिसूचना के प्रकाशित होने पर यह समझा जाएगा कि सदन का गठन हो गया है। जिस निर्वाचन का यहां पर संदर्भ है वह सदन की बैठक में हुई विधायी कार्यवाही का भाग नहीं होता। ऐसे निर्वाचन में दिया गया मत सदन के समक्ष उत्पन्न होने वाले किसी मुद्दे पर दिया गया मत नहीं है। अध्यक्ष का निर्वाचन पर कोई नियंत्रण नहीं होता... इस प्रकार निर्वाचन के दौरान उठाए गए सभी कदम सदन की किसी बैठक में होने वाली कार्यवाही की परिधि के बाहर होते हैं।[76]

जैसाकि कहा जा चुका है, किसी उम्मीदवार को निर्वाचन के लिए संविधान की तीसरी अनुसूची में दिए गए प्ररूप के अनुसार शपथ लेनी पड़ती है या प्रतिज्ञान करना होता है। उम्मीदवार को अपने नामनिर्देशन

के पश्चात् किन्तु नामनिर्देशन पत्रों की छानबीन की तारीख के पहले ऐसी शपथ लेनी पड़ती है या ऐसा प्रतिज्ञान करना पड़ता है। जो उम्मीदवार ऐसा करने में विफल रहता है वह चुने जाने के लिए अयोग्य हो जाता है।[77] किन्तु यदि शपथ के प्ररूप में मात्र मुद्रण की अशुद्धि हो या किसी क्षेत्रीय भाषा में किसी शब्दावली के अनुवाद में अशुद्धि मात्र हो तो उसके अन्य दृष्टि से विधिमान्य होने पर किसी उम्मीदवार का निर्वाचन रद्द नहीं होता।[78] राज्य सभा के लिए निर्वाचन हेतु किसी उम्मीदवार के लिए यह आवश्यक है कि वह पांच हजार रुपये (या अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवार के मामले में दो हजार पांच सौ रुपये) जमा करे।[79] उसे यह राशि निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) के पास नकद जमा करनी चाहिए या उस राशि को भारतीय रिज़र्व बैंक या सरकारी खजाने में जमा करना चाहिए।[80] किन्तु एक उम्मीदवार के संबंध में अधिकतम 4 नामनिर्देशन पत्र उपस्थित किए जा सकते हैं और उस उम्मीदवार के लिए एक ही निक्षेप आवश्यक होगा।[81]

निर्वाचन अधिकारी (रिटर्निंग ऑफिसर) नामनिर्देशन पत्रों की जांच करता है और यह निर्णय करता है कि वे कानून के अनुसार मान्य हैं या नहीं। जिन आधारों पर नामनिर्देशन पत्र रद्द किया जा सकता है वे ये हैं कि छानबीन की तारीख को उम्मीदवार संविधान के अनुच्छेद 84 और अनुच्छेद 102 के अधीन या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के भाग 2 के अधीन या संघ राज्यक्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 की धारा 4 के अधीन स्थान (सीट) को भरने के लिए चुने जाने हेतु या तो योग्य नहीं है या अयोग्य है या उसका नामनिर्देशन पत्र लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अनुसार नहीं है या उसने आवश्यक राशि जमा नहीं की है या नामनिर्देशन पत्र पर उसके प्रस्थापक (प्रस्तावक) का हस्ताक्षर असली नहीं है।[82] तथापि, निर्वाचन अधिकारी किसी ऐसी त्रुटि के आधार पर नामनिर्देशन पत्र को अस्वीकार नहीं करेगा जिसका स्वरूप वास्तविक न हो।[83]

कोई उम्मीदवार अपनी उम्मीदवारी ऐसी लिखित सूचना द्वारा वापस ले सकेगा जिस पर उसके हस्ताक्षर होंगे और जिसे स्वयं उसके द्वारा या अपने प्रस्तावक द्वारा या अपने विधिवत् प्राधिकृत निर्वाचन अभिकर्ता द्वारा उम्मीदवारी वापस लेने के लिए नियत दिन को अपराह्न तीन बजे से पहले निर्वाचन अधिकारी को दे दिया जाएगा।[84] उम्मीदवारी वापस लेने की सूचना को वापस लेने की अनुमति नहीं दी जाएगी।[85] वापस लेने का समय समाप्त होने के तुरंत बाद निर्वाचन अधिकारी विधिमान्य रूप से नामनिर्देशित उम्मीदवारों की एक सूची अकारादि क्रम से तैयार करता है और उसे प्रकाशित करता है।[86]

यदि चुनाव लड़ने वाले उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले स्थानों के बराबर है तो निर्वाचन अधिकारी तत्काल ऐसे सभी उम्मीदवारों को उन स्थानों को भरने के लिए विधिवत् रूप से निर्वाचित घोषित करता है। यदि निर्वाचन लड़ने वाले उम्मीदवारों की संख्या भरे जाने वाले स्थानों की संख्या से अधिक है तो मतदान होता है [87] और वह निर्वाचन आयोग द्वारा नियत किए गए घंटों के दौरान होता है।[88] मतदान होने के बाद मतों की गणना होती है [89] और निर्वाचन अधिकारी निर्वाचन के परिणाम की घोषणा करता है।[90] निर्वाचन के परिणाम की घोषणा के बाद निर्वाचन अधिकारी यथाशीघ्र राज्य सभा के महासचिव और निर्वाचन आयोग को परिणाम की सूचना देता है।[91] इसके बाद विधि तथा न्याय मंत्रालय निर्वाचित प्रतिनिधियों के नामों वाली घोषणा को भारत के राजपत्र में प्रकाशित कराता है।[92] जिस तारीख को कोई उम्मीदवार निर्वाचित घोषित होता है वह तारीख उस उम्मीदवार के निर्वाचन की तारीख होती है।[93] किसी उम्मीदवार के निर्वाचित घोषित होने के बाद निर्वाचन अधिकारी उसे निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 के प्ररूप 24 में निर्वाचन का प्रमाणपत्र देता है और उम्मीदवार से उसकी रसीद प्राप्त करता है जिसमें उम्मीदवार के विधिवत् हस्ताक्षर होते हैं। वह इस रसीद को रजिस्ट्रीकृत डाक द्वारा राज्य सभा के महासचिव को भेजता है।[94]

लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 12 के अधीन जारी की गई अधिसूचना के अनुसरण में किसी वर्ष हुए निर्वाचनों के बाद उन सदस्यों के नाम, जो राज्यों की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों द्वारा और दिल्ली और पांडिचेरी संघ राज्यक्षेत्रों के निर्वाचक-मंडल के सदस्यों द्वारा उक्त निर्वाचनों में निर्वाचित किए गए हैं, ऐसे किन्हीं व्यक्तियों के नामों के सहित, जिन्हें राष्ट्रपति ने राज्य सभा के लिए संविधान के अनुच्छेद 80 के खंड (1) के उपखंड (क) के अधीन नामनिर्देशित किया है, विधि मंत्रालय द्वारा भारत के राजपत्र में अधिसूचित किए जाते हैं।[95]

जब राज्य सभा के लिए निर्वाचित सदस्य की पदावधि की समाप्ति से पूर्व उसका स्थान रिक्त हो जाता है या राज्य सभा के लिए उसका निर्वाचन शून्य कर दिया जाता है तब निर्वाचन आयोग संबंधित विधान सभा के निर्वाचित सदस्यों या निर्वाचक-मंडल के सदस्यों से एक अधिसूचना द्वारा अपेक्षा करता है कि वे ऐसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए एक व्यक्ति को निर्वाचित करें। रिक्ति होने के छः महीने के भीतर उप-चुनाव कराना आवश्यक होता है। तथापि, उस स्थिति में यह बात लागू नहीं होगी यदि, (1) रिक्ति के संबंध में किसी सदस्य का शेष कार्यकाल एक वर्ष से कम हो अथवा (2) निर्वाचन आयोग केन्द्रीय सरकार के परामर्श से यह प्रमाणित करे कि उस समयावधि के भीतर उपचुनाव कराना कठिन है।[96]

ऐसे निर्वाचन में किसी उम्मीदवार द्वारा या किसी निर्वाचक द्वारा लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 में विनिर्दिष्ट आधारों में से एक या एकाधिक आधारों पर[97] निर्वाचित उम्मीदवार के निर्वाचन की तारीख से पैंतालीस दिनों के भीतर[98] एक निर्वाचन याचिका द्वारा निर्वाचन को चुनौती दी जा सकती है।

एकल संक्रमणीय मत की प्रक्रिया

राज्य सभा के लिए सदस्यों का निर्वाचन आनुपातिक प्रतिनिधित्व पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा होता है। इस निर्वाचन पद्धति के सामान्य सिद्धांत संक्षिप्त रूप में इस प्रकार हैं:

> एकल मत एक नामनिर्देशित व्यक्ति से दूसरे नामनिर्देशित व्यक्ति को अंतरित किया जा सकता है और ऐसा दो विशिष्ट स्थितियों में होता है जहां अन्यथा मत बर्बाद हो सकते हैं। ये स्थितियां निम्नलिखित हैं:
>
> (1) जब किसी उम्मीदवार को उसकी सफलता के लिए अपेक्षित मतों से अधिक मत मिलते हैं और इसलिए उसके पास अनावश्यक अधिशेष हैं।
>
> (2) जहां किसी उम्मीदवार को इतने कम मत मिलते हैं कि उसके सफल होने की कोई संभावना ही नहीं होती और इसलिए उसको मिलने वाले मत बर्बाद होते हैं।[99]

निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961 के भाग-7 के नियम 71-85 और उसमें संलग्न अनुसूची उपरोक्त सिद्धांतों पर आधारित है।

उपरोक्त नियमों के द्वारा जिस प्रणाली और पद्धति को प्रस्तुत किया गया है उसके अधीन प्रत्येक निर्वाचक के पास केवल एक मत होता है, चाहे भरे जाने वाले स्थानों की संख्या कितनी ही क्यों न हो। किन्तु वह एकल मत एक उम्मीदवार से दूसरे उम्मीदवार को अंतरित किया जा सकता है। मतपत्र में उम्मीदवारों के नामों का उल्लेख होता है और निर्वाचक उसके द्वारा चुने गए नामों के सामने अंक 1, 2, 3, 4 इत्यादि के माध्यम से उम्मीदवारों के लिए अपने अधिमानों को मतपत्रों पर चिन्हित करता है और ऐसे उल्लेख का अर्थ यह समझा जाता है कि वे अधिमान दिए गए क्रम में निर्वाचक के विकल्प को दर्शाते हैं। निर्वाचक द्वारा किसी उम्मीदवार के नाम के सामने लिखे गए अंक 1 का अर्थ ''प्रथम अधिमान'' है; उम्मीदवार के नाम के सामने लिखे गए अंक 2 का अर्थ ''द्वितीय अधिमान'' है और इसी तरह से आगे भी होता है।[100]

निर्वाचन में किसी उम्मीदवार के चुने जाने के लिए विधिमान्य मतों की न्यूनतम संख्या को कोटा कहा जाता है। ऐसे निर्वाचन में जहां केवल एक स्थान को भरा जाना है, प्रत्येक गणना में प्रत्येक मतपत्र का मूल्यांक 1 का समझा जाता है और जहां तक कोटा का संबंध है, सभी उम्मीदवारों के नामों पर आकलित मूल्यांकों को जोड़कर और जोड़ को 2 से भाग देकर और यदि कुछ शेष बचता है तो उसका ध्यान न रखते हुए भागफल में 1 जोड़कर जो संख्या निकलती है वही कोटा है।[101]

ऐसे किसी निर्वाचन में जिसमें एक से अधिक स्थान भरे जाते हैं, हर विधिमान्य मतपत्र को मूल्यांक 100 का समझा जाता है और जहां तक कोटा का संबंध है, सभी उम्मीदवारों के नाम आकलित मूल्यांकों को जोड़ा जाता है, जोड़ को उस संख्या से विभाजित किया जाता है जो भरी जाने वाली रिक्तियों की संख्या से 1 अधिक है और यदि कुछ शेष बचता है तो उसका ध्यान न रखते हुए भागफल में 1 जोड़ा जाता है और उसके फलस्वरूप जो संख्या निकलती है वही कोटा है।[102] उदाहरण के लिए मान लीजिए कि सात सदस्यों को निर्वाचित किया जाना है, उम्मीदवारों की संख्या सोलह है और एक सौ चालीस ऐसे निर्वाचक हैं जिनके मत विधिमान्य हैं तो कोटा इस प्रकार होगा:

$$\frac{140x100}{7+1} = \text{भागफल} + 1 = \text{कोटा अथवा}$$

$$\frac{14000}{8} = 1750 + 1 = 1751 \text{ (कोटा)}[103]$$

प्रारंभिक प्रक्रिया में गणना इस प्रकार होती है:

निर्वाचन अधिकारी प्रथमत: डाक-मतपत्रों वाले लिफाफों के संबंध में कार्यवाही करता है और उसके बाद मतपेटियों को खोलता है, मतपत्रों की गणना करता है और जो मतपत्र विधिमान्य नहीं पाए जाते उनकी छंटाई करता है और उन्हें अस्वीकार (प्रतिक्षेपित) करता है। वह मतपत्र विधिमान्य नहीं समझा जाता जिस पर—

(क) अंक 1 चिह्नित नहीं है; अथवा

(ख) अंक 1 एक से अधिक उम्मीदवार के नाम के सामने लिखा गया है या ऐसे स्थान पर है जिससे यह सन्देहास्पद हो जाता है कि उसका आशय किस उम्मीदवार पर लागू होता है; अथवा

(ग) अंक 1 और कुछ अन्य अंक एक ही उम्मीदवार के सामने लिखे गए हैं; अथवा

(घ) कोई ऐसा चिह्न या लिखावट है जिससे निर्वाचक पहचाना जा सकता है।[104]

जो मतपत्र विधिमान्य नहीं होते उन्हें अस्वीकार करने के बाद निर्वाचन अधिकारी (क) शेष मतपत्रों को हर एक उम्मीदवार के लिए अभिलिखित प्रथम अधिमान के अनुसार पार्सलों में रखता है; (ख) हर एक पार्सल में जो मतपत्र होते हैं उनकी गणना करता है और उनकी संख्या तथा कुल संख्या अभिलिखित करता है; और (ग) हर एक उम्मीदवार के नाम उसके पार्सल के मतपत्रों के मूल्यांक आकलित करता है। इसके पश्चात् वह उपरोक्त रूप से कोटा निर्धारित करता है।

यदि किसी गणना के समाप्त होने पर उम्मीदवार के नाम पर आकलित मतपत्रों का मूल्यांक कोटे के बराबर है या कोटे से अधिक है तो वह उम्मीदवार निर्वाचित घोषित कर दिया जाता है।[105] यदि उम्मीदवार के नाम आकलित मतपत्रों का मूल्यांक कोटे से अधिक है तो अधिशेष को उस ''बने रहने वाले उम्मीदवार'' के पक्ष में अन्तरित कर दिया जाता है जो कि उस उम्मीदवार के मतपत्रों में निर्वाचक

के अधिमान क्रम में अगले उम्मीदवार के रूप में दर्शाया गया है।[106] ''अधिशेष'' का अर्थ वह संख्या है जिससे किसी उम्मीदवार के मूल और अंतरित मतों का मूल्यांक कोटे से अधिक है। ''बने रहने वाला उम्मीदवार'' का अर्थ कोई ऐसा उम्मीदवार है जो निर्वाचित नहीं हुआ है और किसी दिए गए समय पर मतदान से बाहर (अपवर्जित) नहीं हुआ है।[107] यदि एक से अधिक उम्मीदवार को अधिशेष प्राप्त है तो अधिकतम अधिशेष के संबंध में पहले कार्यवाही होती है और दूसरे अधिशेषों पर उनके परिमाण के क्रम के अनुसार कार्यवाही होती है। जहां पर वितरण के लिए एक से अधिक अधिशेष है और दो या अधिक अधिशेष समान हैं वहां हर एक उम्मीदवार के ''मूल मतों'' को ध्यान में रखा जाता है और जिस उम्मीदवार को सर्वाधिक मूल मत मिले हैं उसका अधिशेष सर्वप्रथम वितरित किया जाता है और यदि उनके मूल मतों का मूल्यांक समान है तो निर्वाचन अधिकारी लॉटरी द्वारा यह निर्णय करता है कि किस उम्मीदवार का अधिशेष सबसे पहले वितरित किया जाए।[108] किसी उम्मीदवार के संबंध में ''मूल मत'' का अर्थ वह मत है जो ऐसे मतपत्र से प्राप्त होता है जिसमें ऐसे उम्मीदवार के लिए प्रथम अधिमान को अभिलिखित किया गया है।[109]

यदि किसी उम्मीदवार का वह अधिशेष, जो अंतरित किया जाना है, केवल मूल मतों से ही उत्पन्न हुआ है, तो निर्वाचन अधिकारी उस उम्मीदवार के पार्सल के सब मतपत्रों की पड़ताल करता है, अनिश्शेषित पत्रों (न चुके हुए पत्रों) को, उनमें अभिलिखित अगले अधिमानों के अनुसार, उप-पार्सलों में विभाजित करता है और निश्शेषित पत्रों (चुके हुए पत्रों) का एक अलग उप-पार्सल बनाता है।[110] ''निश्शेषित (चुके हुए) पत्र'' का अर्थ वह मतपत्र है जिस पर बने रहने वाले उम्मीदवार के लिए आगे और अधिमान अभिलिखित नहीं हैं परन्तु किसी पत्र को तभी निश्शेषित पत्र समझा जाता है जब कभी (क) दो या अधिक उम्मीदवारों के नाम, चाहे वे बने रहने वाले हों या न हों, एक ही अंक से चिह्नित हैं और अधिमान के क्रम में अगले हैं; या (ख) अधिमान के क्रम में अगले उम्मीदवार का नाम चाहे वह ''बने रहने वाला'' हो या न हो, ऐसे अंक से, जो मतपत्र पर किसी अन्य अंक से बिल्कुल बाद का अंक नहीं है या दो या अधिक अंकों से चिह्नित है।[111] निर्वाचन अधिकारी को प्रत्येक उप-पार्सल और सभी अनिश्शेषित (न चुके हुए) पत्रों के मूल्यांक का निर्धारण करना होता है। यदि अनिश्शेषित पत्रों का मूल्यांक अधिशेष के बराबर है या उससे कम है तो वह सभी अनिश्शेषित पत्रों को उस मूल्यांक पर अंतरित करता है जिस पर वे उस उम्मीदवार द्वारा प्राप्त किए गए थे जिसका अधिशेष अंतरित किया जा रहा है। यदि अनिश्शेषित पत्रों का मूल्यांक अधिशेष से अधिक है तो वह अनिश्शेषित पत्रों के उप-पार्सलों का अंतरण उस कम मूल्यांक पर करता है जो अधिशेष को अनिश्शेषित मत पत्रों की कुल संख्या से विभक्त करके निर्धारित किया जाता है।[112] निर्वाचन अधिकारी को विहित प्रक्रिया के अनुसार अंतरित और मूल मतों से उत्पन्न होने वाले अधिशेष को अंतरित करना होता है।[113]

यदि सभी अधिशेषों के अंतरित कर दिए जाने के बाद निर्वाचित उम्मीदवारों की संख्या अपेक्षित संख्या से कम हो तो निर्वाचन अधिकारी मतदान में निम्नतम रहने वाले उम्मीदवार को मतदान से बाहर कर देता है और उसके अनिश्शेषित मतपत्रों को उन पर अभिलिखित अगले अधिमानों के अनुसार ''बने रहने वाले उम्मीदवारों'' के बीच वितरित कर देता है।[114] मतदान से बाहर कर दिए गए उम्मीदवार के मूल मतों वाले मतपत्र सर्वप्रथम एक सौ के मूल्यांक पर अंतरित किए जाते हैं।[115] तत्पश्चात् मतगणना से बाहर कर दिए गए उम्मीदवार के अंतरित मत उस क्रम में और उस मूल्यांक पर अंतरित किए जाते हैं जिस क्रम में और जिस मूल्यांक पर उन्हें उसने प्राप्त किया है।[116] यदि मतों के अंतरण के फलस्वरूप उम्मीदवार को प्राप्त हुए मतों का मूल्यांक कोटे के बराबर है या उससे अधिक है तो गणना आगे और अंतरण किए बिना पूरी कर ली जाती है।[117] यह प्रक्रिया मतदान में निम्नतम उम्मीदवारों में से एक के बाद दूसरे के मतदान से बाहर होने

में तब तक दुहराई जाती है जब तक ऐसी रिक्ति कोटे वाले उम्मीदवार के निर्वाचन द्वारा न भर जाए।[118] जब ''बने रहने वाले उम्मीदवारों'' की संख्या घटकर न भरी गई शेष रिक्तियों की संख्या के बराबर हो जाती है तब ''बने रहने वाले उम्मीदवारों'' को निर्वाचित घोषित किया जाता है।[119] जब केवल एक रिक्ति बिना भरी रह जाती है और किसी एक उम्मीदवार के मतपत्रों का मूल्यांक किसी अंतरित न किए गए अधिशेष सहित अन्य ''बने रहने वाले उम्मीदवारों'' के मतपत्रों के कुल मूल्यांक से अधिक हो जाता है तब वह उम्मीदवार निर्वाचित घोषित किया जाता है।[120] जब केवल एक रिक्ति बिना भरी रह जाती है और ''बने रहने वाले उम्मीदवार'' दो ही रह जाते हैं और उनमें से हर एक के मतों का मूल्यांक बराबर है और ऐसा कोई अधिशेष नहीं रहा है जिसे अंतरित किया जा सकता है तब निर्वाचन अधिकारी लॉटरी निकालकर यह निर्णय करता है कि उनमें से कौन-सा उम्मीदवार अपवर्जित किया जाए और उसे अपवर्जित करने के पश्चात् वह दूसरे उम्मीदवार को निर्वाचित घोषित करता है।[121]

नामनिर्देशन

राज्य सभा राज्यों और संघ राज्यक्षेत्रों के दो सौ अड़तीस प्रतिनिधियों के अलावा राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित उन बारह सदस्यों से मिलकर बनती है जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा जैसे विषयों के संबंध में विशेष ज्ञान या व्यावहारिक अनुभव है।[122] कार्य आवंटन नियम, 1961 के अधीन राज्य सभा के लिए नामनिर्देशन का विषय गृह कार्य मंत्रालय को सौंपा गया है जो नामनिर्देशनों की प्रक्रिया को शुरू करने वाला प्रशासनिक मंत्रालय है। राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशन कर दिए जाने के बाद गृह मंत्रालय उसे अधिसूचित करता है।

नामनिर्देशित सदस्य की किसी आकस्मिक रिक्ति के मामले में उस स्थान को भरने के लिए नामनिर्देशित सदस्य की पदावधि संविधान के अनुच्छेद 80 के खंड (1) के उप-खंड (क) के अधीन जारी अधिसूचना की तारीख से आरंभ होती है।[123] वह सदस्य अपने पूर्ववर्ती सदस्य की पदावधि की शेष अवधि तक सदस्य बना रहता है।

एक बार विधि मंत्रालय को इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा कि क्या नामनिर्देशित सदस्य के स्थान में कोई आकस्मिक रिक्ति हो सकती है। मंत्रालय ने इस संबंध में यह राय दी:

> संविधान के अनुच्छेद 83, लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 तथा नामनिर्देशन के संबंध में राष्ट्रपति के आदेश में जो व्यवस्था है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य सभा के एक-तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हों, निर्वाचित और नामनिर्देशित सदस्यों के साथ एक-समान व्यवहार होना चाहिए।.... लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 154(1) और (3) को सामान्य रूप से पढ़ने से ही यह साफ हो जाता है कि राज्य सभा के निर्वाचित या नामनिर्देशित सदस्य की पदावधि छह वर्ष की है और नामनिर्देशित सदस्य के स्थान में आकस्मिक रिक्ति हो सकती है।
>
> संविधान के अनुच्छेद 83 या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के किसी उपबंध में यह मानने का कोई आधार नहीं है कि किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुना गया नामनिर्देशित सदस्य छह वर्ष की अवधि के लिए पद धारण करेगा।
>
> संविधान के अधीन आकस्मिक रिक्ति तब उत्पन्न हो सकती है जब किसी सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है या रिक्त घोषित कर दिया जाता है या उसका निर्वाचन शून्य घोषित कर दिया जाता है। अब तक जो प्रथा अपनाई जाती रही है उससे भी यह आभास होता है कि किसी नामनिर्देशित सदस्य की नियमित पदावधि के पूरा होने के पूर्व उसके स्थान के रिक्त हो जाने पर ऐसी रिक्ति को आकस्मिक रिक्ति माना जाता रहा है।[124]

किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुने गए सदस्य के अलावा दूसरे सदस्यों की पदावधि छह वर्ष है।[125] जब किसी सदस्य के निवृत्त होने के कारण हुई रिक्ति को भरने के लिए राष्ट्रपति किसी व्यक्ति को नामनिर्देशित करता है तब लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 71 के अधीन विधि मंत्रालय द्वारा इसकी अधिसूचना जारी की जाती है और ऐसे सदस्य की पदावधि अधिसूचना की तारीख से आरंभ होती है। यद्यपि गृह मंत्रालय द्वारा व्यक्तियों के नामनिर्देशन की अधिसूचना की तारीख अधिनियम की धारा 71 के अधीन विधि मंत्रालय द्वारा जारी की गई अधिसूचना से पहले की होती है।

1952 से लेकर 2006 तक राज्य सभा के लिए 108 व्यक्ति नामनिर्देशित किए गए हैं। नामनिर्देशित सदस्यों को वे सभी शक्तियां, विशेषाधिकार और उन्मुक्तियां प्राप्त हैं जो अन्य निर्वाचित सदस्यों को उपलब्ध हैं। तथापि, वे राष्ट्रपति के निर्वाचन में मतदान करने की पात्रता नहीं रखते क्योंकि राष्ट्रपति का निर्वाचन एक ऐसे निर्वाचक-मंडल के सदस्य करते हैं जो संसद् के निर्वाचित सदस्यों और राज्यों (जिनमें दिल्ली का राष्ट्रीय राजधानी राज्यक्षेत्र और पांडिचेरी का संघ राज्यक्षेत्र शामिल है) की विधान सभाओं के निर्वाचित सदस्यों से मिलकर बनता है।[126] उपराष्ट्रपति के निर्वाचन में ऐसी कोई रोक नहीं है क्योंकि इस निर्वाचन के लिए जो निर्वाचक-मंडल होता है वह संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनता है।[127] इस संबंध में यह उल्लेख किया जा सकता है कि अभी तक केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् में कोई नामनिर्देशित सदस्य शामिल नहीं किया गया है, यद्यपि संविधान के अधीन ऐसा करने पर कोई रोक नहीं है।

> प्रोफेसर सैयद नूरुल हसन 1968 में राज्य सभा के लिए नामनिर्देशित किए गए थे। उन्होंने 30 सितम्बर, 1971 को राज्य सभा की सदस्यता से इस्तीफा दे दिया। उन्हें 4 अक्तूबर, 1971 को केन्द्रीय मंत्रि-परिषद् में शामिल किया गया। बाद में वे 11 नवम्बर, 1971 को उत्तर प्रदेश राज्य से राज्य सभा के लिए निर्वाचित हुए।

नामनिर्देशित सदस्यों को समितियों का सभापति नियुक्त करने के भी उदाहरण हैं।[128] दसवीं सूची के अंतर्गत यदि कोई नामनिर्देशित सदस्य अपना स्थान ग्रहण करने की तारीख से छह महीने की समाप्ति के पश्चात् किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित हो जाता है तो वह सदन का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जाएगा।[129]

राज्य सभा के सदस्यों के लिए संसद्-सदस्य का पदनाम

लोक सभा के सदस्यों की भांति राज्य सभा के सदस्य भी अपने नामों के आगे संसद्-सदस्य (मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट या संक्षेप में एम॰ पी॰) पदनाम का प्रयोग कर सकते हैं।

> 1952 के आरंभ में काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्य अपने नामों के आगे ''एम॰ सी॰ (मेम्बर ऑफ काउंसिल)'' लगाया करते थे। 16 मई, 1952 को, जो काउंसिल ऑफ स्टेट्स की चौथी बैठक थी, एक सदस्य ने सभापति से पूछा कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को क्या कहा जाएगा। सभापति ने उसे बताया कि मामला विचाराधीन है।[130] इस बीच 6 जून, 1952 को हाउस ऑफ दि पीपल के अध्यक्ष ने घोषणा की कि उन्होंने संसद्-सदस्यों को वेतन तथा भत्ते के भुगतान के संबंध में संयुक्त समिति नियुक्त कर दी है[131] और उन्होंने 20 जून, 1952 को एक और घोषणा करते हुए कहा कि समिति इस बात पर भी विचार करेगी कि हाउस ऑफ दि पीपल और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों के लिए कौन-से संक्षिप्ताक्षर प्रयोग में लाए जाएं और यह समिति इस संबंध में संसद् को अपना प्रतिवेदन देगी। उन्होंने कहा:
>
> > थोड़ा-सा असंतोष इस संबंध में व्यक्त किया गया था कि काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्य ''एम॰ सी॰'' पदनाम पसन्द नहीं करते और चूंकि संसद् दोनों सदनों से मिलकर बनती है इसलिए इस मुद्दे पर विचार करना आवश्यक है। यही कारण है कि एक निर्देश दिया गया है। अत: समिति अपनी सिफारिश देगी।[132]

संयुक्त समिति ने 28 जून, 1952 को हुई अपनी बैठक में दोनों सदनों के सदस्यों के लिए संक्षिप्ताक्षरों के स्वरूप के प्रश्न पर विचार किया। बैठक में इस प्रश्न पर कि दोनों सदनों के सदस्यों के लिए कौन-सा पदनाम प्रयुक्त किया जा सकता है, भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण व्यक्त किए गए। उदाहरण के लिए एक सदस्य हाउस ऑफ दि पीपल के सदस्यों के लिए एम॰ पी॰ और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों के लिए ''काउंसिलर'' पदनाम के पक्ष में था। एक अन्य सदस्य का मत था कि दोनों सदनों के सदस्यों को एम॰ पी॰ कहा जा सकता है किन्तु संसदीय कार्य के प्रयोजनों के लिए हाउस ऑफ दि पीपल के सदस्यों को एम॰ पी॰ (एच॰) और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को एम॰ पी॰ (सी॰) कहा जा सकता है। एक अन्य सदस्य की पसन्द थी कि हाउस ऑफ दि पीपल के सदस्यों को ''सीनेटर'' और काउंसिल ऑफ स्टेट्स के सदस्यों को ''काउंसिलर'' कहा जाए।[133]

समिति ने 15 जुलाई, 1952 को हुई अपनी बैठक में यह निर्णय किया कि दोनों ही सदनों के सदस्यों को संसद्-सदस्य (मेम्बर ऑफ पार्लियामेंट या एम॰ पी॰) कहा जाना चाहिए।[134]

समिति ने 5 अगस्त, 1952 को हाउस ऑफ दि पीपल में प्रस्तुत अपने प्रतिवेदन में तद्नुसार सिफारिश की।[135]

पदावधि

राज्य सभा का विघटन नहीं होता किंतु उसके सदस्यों में से यथासंभव निकटतम एक-तिहाई सदस्य लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 के अधीन इस निमित्त किए गए उपबंधों के अनुसार प्रत्येक दूसरे वर्ष की समाप्ति पर यथाशक्य शीघ्र निवृत्त हो जाते हैं।[136] किसी सदस्य (चाहे वह निर्वाचित हो या नामनिर्देशित हो) की पदावधि छह वर्ष है।[137] किंतु आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए चुना गया सदस्य अपने पूर्ववर्ती के शेष भाग के लिए पद धारण करता है।[138] जहां तक किसी सदस्य की पदावधि के आरंभ होने का संबंध है, (i) वह द्विवार्षिक रूप से (अर्थात् हर दूसरे वर्ष के समाप्त होने पर) निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य के मामले पर उस तारीख से आरंभ होती है जब उसका नाम भारत सरकार द्वारा राजपत्र में अधिसूचित किया जाता है[139] और (ii) किसी आकस्मिक रिक्ति को भरने के लिए निर्वाचित/नामनिर्देशित सदस्य के मामले में उसके निर्वाचन की घोषणा के शासकीय राजपत्र में प्रकाशित होने की तारीख से या उसके नामनिर्देशन की घोषणा करने वाली अधिसूचना की तारीख से, जैसी भी स्थिति हो, आरंभ होती है।[140]

राज्य सभा का आरंभिक गठन

राज्य सभा को सर्वप्रथम 3 अप्रैल, 1952 को गठित किया गया था और यह गठन विभिन्न राज्यों को आवंटित स्थानों के आधार पर किया गया था। जैसाकि संविधान की तत्कालीन चौथी अनुसूची में दर्शाया गया था [141] वह उस समय 216 सदस्यों से मिलकर बनी थी जिनमें से 12 सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामनिर्देशित थे और बाकी 204 सदस्य राज्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए निर्वाचित किए गए थे। तत्कालीन लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 154(2) के अधीन राष्ट्रपति ने निर्वाचन आयोग से परामर्श करके राज्य सभा (सदस्यों की पदावधि) आदेश, 1952 बनाया[142] जिसके द्वारा उस समय चुने गए सदस्यों में से कुछ सदस्यों की पदावधि इस प्रकार कम कर दी गई थी ताकि हर एक वर्ग के स्थानों को धारण करने वाले सदस्यों में से यथाशक्य निकटतम एक-तिहाई हर दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हो जाएं। इस आदेश में यह उपबंध किया गया था कि पहले, दूसरे या तीसरे प्रवर्ग में किसी सदस्य की स्थिति के अनुसार उसकी पदावधि 2 अप्रैल, 1958, 2 अप्रैल, 1956 और 2 अप्रैल, 1954 को समाप्त होगी।

निर्वाचित सदस्यों को राज्य-वार वर्गीकृत किया गया था किन्तु भोपाल, बिलासपुर एवं हिमाचल प्रदेश, दिल्ली और कच्छ को एक ही समूह में रखा गया था। इसी प्रकार बारह नामनिर्देशित सदस्यों को भी तीन प्रवर्गों में बांटा गया था। प्रत्येक प्रवर्ग में कौन-कौन से सदस्य रखे जाएं इसका निर्धारण निर्वाचन आयोग द्वारा 29 नवम्बर, 1952 को सार्वजनिक रूप से लॉटरी निकालकर किया गया।[143]

इस प्रवर्गीकरण और लॉटरी निकाले जाने के फलस्वरूप 72 सदस्य पहले प्रवर्ग अर्थात् 1958 में निवृत्त होने वालों के प्रवर्ग में रखे गए और 71–71 सदस्य दूसरे और तीसरे प्रवर्ग अर्थात् क्रमशः 1956 और 1954 में निवृत्त होने वालों के प्रवर्ग में रखे गए। अजमेर–कुर्ग और त्रिपुरा–मणिपुर समूहों के दो सदस्यों की पदावधि 2 वर्ष के लिए पहले ही निर्धारित हो गई थी और इसलिए उन्हें इस प्रवर्गीकरण या लॉटरी निकाले जाने में शामिल नहीं किया गया।[144] सदस्यों की निर्धारित पदावधि को दर्शाने वाला एक विवरण भारत के असाधारण राजपत्र में प्रकाशित किया गया।[145] इस प्रकार उक्त प्रक्रिया द्वारा यह सुनिश्चित किया गया कि यथाशक्य निकटतम रूप से राज्य सभा के एक–तिहाई सदस्य हर दूसरे वर्ष की दूसरी अप्रैल को निवृत्त होंगे और उनके स्थान पर नए सदस्य निर्वाचित होकर आएंगे।

बाद में किए गए परिवर्तन

किन्तु बाद में उपरोक्त रूप से निर्धारित पदावधि में राज्यों के निर्माण या पुनर्गठन के कारण कुछ सदस्यों के लिए परिवर्तन किया गया। इस प्रयोजन के लिए न्यूनाधिक रूप से उपरोक्त प्रक्रिया जैसी प्रक्रिया अपनाई गई। पुनर्गठन के फलस्वरूप जब भी स्थानों में वृद्धि की गई या स्थानों का अंतरण किया गया तब निर्वाचनों में निर्वाचित होने वाले सदस्यों की पदावधि निर्धारित करने के लिए कानून में विनिर्दिष्ट उपबंध शामिल किए गए।

आंध्र राज्य अधिनियम, 1953 के अधीन एक सदस्य की पदावधि इस प्रकार बढ़ाई गई कि वह 2 अप्रैल, 1958 को समाप्त हो और एक सदस्य की पदावधि इस प्रकार घटाई गई कि वह 2 अप्रैल, 1954 को समाप्त हो।[146] अधिनियम के उपबंधों के अनुसार यह प्रक्रिया राज्य सभा के सचिव ने लॉटरी निकालकर पूरी की।[147]

राज्य पुनर्गठन (राज्य सभा) (सदस्यों की पदावधि) आदेश, 1956[148] के अधीन, जो राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956[149] के अंतर्गत बनाया गया था, यह सुनिश्चित करने के लिए कि यथाशक्य निकटतम एक–तिहाई सदस्य अप्रैल, 1958 के दूसरे दिन निवृत्त हों और उसके पश्चात् हर दूसरे वर्ष की समाप्ति पर निवृत्त हों, बम्बई से निर्वाचित तीन सदस्यों की पदावधि 1962 से घटाकर 1960 कर दी गई और वहां के चार अन्य सदस्यों की पदावधि 1960 से घटाकर 1958 कर दी गई; केरल से निर्वाचित एक सदस्य की पदावधि 1962 से घटाकर 1960 कर दी गई और वहां के एक दूसरे सदस्य की पदावधि 1960 से घटाकर 1958 कर दी गई; मध्य प्रदेश से निर्वाचित एक सदस्य की पदावधि 1958 से बढ़ाकर 1960 कर दी गई और वहां के दो अन्य सदस्यों की पदावधि 1960 से बढ़ाकर 1962 कर दी गई; मद्रास से निर्वाचित एक सदस्य और मैसूर से निर्वाचित एक सदस्य की पदावधि 1958 से बढ़ाकर 1960 कर दी गई।[150] उत्तर प्रदेश से निर्वाचित तीन सदस्यों की पदावधि इस प्रकार निर्धारित की गई कि वह 1962, 1960 और 1958 में समाप्त हो, दिल्ली से निर्वाचित दो सदस्यों की पदावधि इस प्रकार निर्धारित की गई कि वह 1960 और 1958 में समाप्त हो।[151] यह सब निर्वाचन आयोग द्वारा लॉटरी निकालकर किया गया।

बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960 में उपबंध किया गया था कि महाराष्ट्र को आवंटित एक अतिरिक्त स्थान की पदावधि 2 अप्रैल, 1966 को समाप्त हो जाएगी। जहां तक गुजरात को आवंटित दो अतिरिक्त स्थानों का संबंध था, अधिनियम में यह उपबंध किया गया था कि ''उस सदस्य की पदावधि, जो मतों की गणना के अंत में निर्वाचित घोषित हो, या मतों में बराबरी पाए जाने पर उनमें से ऐसे किसी एक सदस्य की पदावधि, जैसाकि निर्वाचन अधिकारी लॉटरी निकाल कर निर्णय करेगा, 2 अप्रैल, 1964 को समाप्त होगी और अन्य सदस्य की पदावधि 2 अप्रैल, 1966 को समाप्त होगी।''[152]

पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966 में उपबंध किया गया था कि हरियाणा को आवंटित स्थानों में विद्यमान रिक्तियों को भरने के लिए निर्वाचित हुए दो सदस्यों में से एक सदस्य की पदावधि 2 अप्रैल, 1968 को समाप्त होगी और दूसरे सदस्य की पदावधि 2 अप्रैल, 1972 को समाप्त होगी। इसका निर्धारण राज्य सभा के सभापति द्वारा लॉटरी निकाल कर किया गया।[153]

नागालैंड राज्य अधिनियम, 1962 की धारा 8 में स्वयं यह उपबंध किया गया था कि नागालैंड को आवंटित स्थान को भरने के लिए पहली बार जो सदस्य निर्वाचित होगा उसकी पदावधि 2 अप्रैल, 1968 को समाप्त हो

जाएगी। पूर्वोत्तर क्षेत्र पुनर्गठन अधिनियम, 1971 की धारा 12 के अधीन राज्य सभा में मेघालय को एक स्थान आवंटित किया गया था। अधिनियम में यह उपबंध नहीं था कि निर्वाचित होने पर उस सदस्य की पदावधि कितनी होगी। अत: राष्ट्रपति ने अधिनियम की धारा 87 के अधीन पूर्वोत्तर क्षेत्र पुनर्गठन (कठिनाइयों को दूर करना) आदेश संख्या 1 को जारी किया ताकि निर्वाचन आयोग लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 147 के अधीन स्थान को आकस्मिक रिक्ति मानकर उसे भर सके। उस अधिनियम की धारा 67 के अधीन उस सदस्य का निर्वाचन 13 अप्रैल, 1972 को अधिसूचित किया गया और उसकी पदावधि उसी तारीख से आरम्भ हुई और 12 अप्रैल, 1978 तक रही।

गोवा, दमण और दीव पुनर्गठन अधिनियम, 1987 के अधीन राज्य सभा में गोवा के नए राज्य को एक स्थान आवंटित किया गया था, किन्तु उसमें भी निर्वाचित होने वाले सदस्य की पदावधि के संबंध में कोई उपबंध नहीं था। गोवा का स्थान न तो लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 12 (द्विवार्षिक निर्वाचन) के अधीन आता था और न उसकी धारा 147 (उप-निर्वाचन) के अधीन आता था। अत: 12 जून, 1987 को राष्ट्रपति ने गोवा, दमण और दीव पुनर्गठन (कठिनाइयों को दूर करना) आदेश संख्या 1 जारी किया जिसमें यह स्पष्ट किया गया था कि स्थान को आकस्मिक रिक्ति मानकर उसे उप-निर्वाचन के द्वारा भरा जाएगा। निर्वाचित सदस्य संबंधी अधिसूचना 8 जुलाई, 1987 को लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 67 के अधीन जारी की गई और सदस्य 7 जुलाई, 1993 तक पद पर बना रहा।[154]

वर्ष 2000 में मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार राज्यों से तीन नए राज्य अर्थात् क्रमश: छत्तीसगढ़, उत्तरांचल और झारखंड बनाए गए। संबंधित राज्य पुनर्गठन अधिनियमों में उन सदस्यों के बारे में उपबंध बनाए गए हैं जो वर्तमान राज्यों में से नवसृजित राज्यों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्य माने जाएंगे, केवल उन सदस्यों के मामलों को छोड़कर जो नवसृजित राज्य उत्तरांचल से 2004 और 2006 में निवृत्त हो रहे हैं। उत्तर प्रदेश पुनर्गठन अधिनियम, 2000 में एक परंतुक जोड़ा गया कि राज्य सभा के सभापति क्रमश: 2004 और 2006 में निवृत्त होने वाले उत्तर प्रदेश के सदस्यों में से एक-एक सदस्य का निर्धारण करने के लिए ड्रॉ निकाल सकते हैं, जिन्हें उत्तरांचल राज्य को आवंटित दो सीटों के लिए निर्वाचित माना जाएगा। तद्नुसार, राज्य सभा के सभापति द्वारा 2 नवम्बर, 2000 को संसद् भवन में अपने पक्ष में एक ड्रॉ निकाला गया।

1968 से यथाशक्य निकटतम एक-तिहाई सदस्यों के निवृत्त होने का चक्र गड़बड़ा गया है और निवृत्ति की तारीख में परिवर्तन करना आवश्यक हो गया है। इसका कारण विधान सभाओं का भंग होना और मध्यावधि आम चुनावों का कराया जाना है और इसके फलस्वरूप सदस्यों की पदावधि निर्वाचनों के कराए जाने के बाद से आरम्भ हुई है। इसके फलस्वरूप लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 154 और 155 के कानूनी उपबंधों के अधीन रिक्तियां निर्धारित तारीख को नहीं भरी जा सकतीं जिससे विसंगति की स्थिति उत्पन्न होती है और हर दूसरे वर्ष एक-तिहाई सदस्यों के निवृत्त होने का चक्र गड़बड़ा जाता है।

इस संदर्भ में दिल्ली और पंजाब के सदस्यों के मामले ध्यान देने योग्य हैं। राज्य सभा में दिल्ली के तीन सदस्य हैं। 15 अप्रैल, 1980 को एक सदस्य के निवृत्त होने के कारण और 2 अप्रैल, 1982 को एक दूसरे सदस्य के निवृत्त होने के कारण दिल्ली से राज्य सभा में दो रिक्तियां हुईं। ये रिक्तियां नहीं भरी जा सकीं क्योंकि तत्कालीन दिल्ली महानगर परिषद्, जिसके सदस्यों से निर्वाचन के लिए निर्वाचकगण बनता था, 7 फरवरी, 1983 तक भंग रही। उसका पुनर्गठन 8 फरवरी, 1983 को हुआ और उसके बाद एक एक-समान कार्यक्रम के अनुसार दो पृथक् द्विवार्षिक चुनाव कराए गए और दोनों सदस्यों की पदावधि 21 नवम्बर, 1983 से आरम्भ हुई और दोनों सदस्य 20 नवम्बर, 1989 को निवृत्त हुए। 2 अप्रैल, 1990 को बाकी बचे सदस्य के निवृत्त होने के कारण एक तीसरी रिक्ति हो गई। दिल्ली विधान सभा के गठित होने के बाद ही तीनों स्थानों के लिए द्विवार्षिक चुनाव हो सकते थे। चूंकि मूल रिक्तियां भिन्न-भिन्न तारीखों को हुई थीं इसलिए उनके लिए द्विवार्षिक चुनाव एक एक-समान कार्यक्रम के अनुसार तीन अलग-अलग निर्वाचनों के रूप में हुए। तीनों सदस्यों की पदावधि 28 जनवरी, 1994 को आरंभ हुई और 27 जनवरी, 2000 को समाप्त हुई। दूसरे शब्दों में, दिल्ली के राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले तीनों सदस्यों की पदावधि एक ही तारीख को साथ-साथ समाप्त हुई।

जहां तक पंजाब का संबंध है, राज्य सभा में उसके प्रतिनिधियों की संख्या पांच है। तीन सदस्य 2 अप्रैल, 1988 को और दो अन्य सदस्य 9 अप्रैल, 1990 को निवृत्त हुए। राज्य विधान सभा के भंग होने के कारण इस राज्य में इन रिक्तियों के लिए चुनाव नहीं हो सके। राज्य में चुनावों के बाद विधान सभा के विधिवत् गठित होने के बाद रिक्तियों की तारीखों के अनुसार दोनों वर्गों की रिक्तियों की अधिसूचना जारी की गई ताकि एक-समान कार्यक्रम के अधीन दोनों वर्गों की रिक्तियां भरी जा सकें। पांचों सदस्यों की पदावधि 10 अप्रैल, 1992 से आरंभ होकर छह वर्षों के लिए थीं (मूल रिक्तियों के बाकी समय के लिए नहीं) और पांचों सदस्य 9 अप्रैल, 1998 को एक साथ निवृत्त हुए।

ऐसी स्थितियों पर काबू पाने के लिए निर्वाचन आयोग ने सिफारिश की है कि कानून को इस प्रकार संशोधित किया जाना चाहिए कि यदि निर्वाचक-मण्डल के अस्तित्व में न होने के कारण या अन्य कारण से निर्धारित तारीख पर चुनाव न कराए जा सकें तो बाद में निर्वाचित होने वाले सदस्य की पदावधि छह वर्ष की अवधि के बाकी समय तक ही रहनी चाहिए और इस समय कानून के अनुसार उसे जो छह वर्षों तक सदस्य बने रहने की अनुमति है वह नहीं दी जानी चाहिए। समिति का मत था कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 154 और 155 में छोटे-से संशोधन करने से एक ही दिन एक-तिहाई से अधिक सदस्यों के निवृत्त होने की विसंगति दूर हो जाएगी।[155] तथापि, गोस्वामी समिति का विचार था कि सभी मामलों में एक ही दिन निवृत्त करने का उपबंध करने के लिए कानून में संशोधन करना आवश्यक नहीं है। समिति का यह भी विचार था कि ऐसा करने से राज्य सभा के सदस्यों की पदावधि अनावश्यक रूप से कम होगी और उसमें अनावश्यक रूप से हस्तक्षेप भी होगा।[156]

> एक बार एक सदस्य ने उल्लेख किया कि केरल से निर्वाचित तीन सदस्य 2 अप्रैल, 1966 को निवृत्त हो रहे हैं और चूंकि केरल विधान सभा कार्य नहीं कर रही है इसलिये वहां पर कोई निर्वाचन नहीं होंगे (केरल 24 मार्च, 1965 को राष्ट्रपति के शासन के अधीन लाया गया था और 6 मार्च, 1967 तक वहां राष्ट्रपति का शासन लागू रहा)। अत: सदस्य ने सुझाव दिया कि संविधान में यह उपबंध करने के लिये उसमें संशोधन किया जाना चाहिये कि जब तक नए सदस्य निर्वाचित न हों तब तक विद्यमान सदस्यों को पद पर बने रहने दिया जाए। गृह मंत्रालय में राज्य मंत्री ने इसके उत्तर में कहा कि यदि संविधान में कोई ऐसा उपबंध है जिससे यह संभव हो सकता है तो सरकार इस बात को देखेगी और इस पर विचार करेगी कि संवैधानिक स्थिति क्या है या क्या होनी चाहिये।[157]

नामनिर्देशित सदस्यों के संबंध में भी ऐसी ही स्थिति है क्योंकि कुछ सदस्यों की पदावधि के समाप्त होने की तारीख के बाद नामनिर्देशनों में विलम्ब होने या उनके स्थगित कर दिये जाने के कारण नामनिर्देशित सदस्यों की निवृत्ति का चक्र भी टूट जाता है, जैसाकि निम्नलिखित उदाहरणों से स्पष्ट होगा:

> 2 अप्रैल, 1978 को चार नामनिर्देशित सदस्य निवृत्त हुये, उनके स्थानों पर उतने ही सदस्यों को 14 अप्रैल, 1978 को नामनिर्देशित किया गया और वे 13 अप्रैल, 1984 को निवृत्त हुये और उनके स्थानों पर तीन सदस्यों का नामनिर्देशन 9 मई, 1984 को किया गया और चौथे सदस्य का नामनिर्देशन 3 जनवरी, 1985 को किया गया; 8 मई, 1990 को निवृत्त हुये सदस्यों के स्थानों के लिये एक सदस्य का नामनिर्देशन 28 मई, 1990 को, दो सदस्यों का नामनिर्देशन 18 सितम्बर, 1990 को और चौथे सदस्य का नामनिर्देशन 11 जनवरी, 1991 को किया गया।
>
> 2 अप्रैल, 1986 को चार नामनिर्देशित सदस्य निवृत्त हुये, 12 मई, 1986 को उनके स्थानों के लिये नामनिर्देशन किये गये और 11 मई, 1992 को निवृत्त हुये सदस्यों के स्थानों पर 27 अगस्त, 1993 को नामनिर्देशन किये गये।
>
> चार नामनिर्देशित सदस्यों की छह वर्षों की पदावधि 27 सितम्बर, 1982 को आरंभ हुई और वह 26 सितम्बर, 1988 को समाप्त हुई। उनके स्थान पर तीन सदस्यों के नामनिर्देशन 25 नवम्बर, 1988 को किए गये और चौथे सदस्य का नामनिर्देशन 15 जून, 1989 को किया गया।
>
> एक नामनिर्देशित सदस्य का 12 जनवरी, 1992 को निधन हो गया, दो नामनिर्देशित सदस्य 24 नवम्बर, 1994 को सेवानिवृत्त हो गए, तीन नामनिर्देशित सदस्य क्रमश: 14 जून, 1995, 27 मई, 1996 और 10 जनवरी, 1997 को सेवानिवृत्त हो गए, दो नामनिर्देशित सदस्य 17 सितम्बर, 1996 को सेवानिवृत्त हो गए और एक

नामनिर्देशित सदस्य का 24 मई, 1997 को निधन हो गया। इन 9 रिक्तियों के लिए 27 अगस्त, 1997 को नामनिर्देशन किया गया।

चार नामनिर्देशित सदस्य 26 अगस्त, 1999 को सेवानिवृत्त हुए और उनके स्थानों पर 22 नवम्बर, 1999 को नामनिर्देशन किए गए।

आठ नामनिर्देशित सदस्य 26 अगस्त, 2003 को सेवानिवृत्त हुए। सात सदस्य 27 अगस्त, 2003 को नामनिर्देशित हुए। एक अन्य सदस्य कुमारी निर्मला देशपांडे 24 जून, 2004 को नामनिर्देशित हुईं।

एक बार एक सदस्य ने एक विशेष उल्लेख के द्वारा सभा का ध्यान 2 अप्रैल, 1982 को चार नामनिर्देशित सदस्यों के निवृत्त होने के कारण हुई रिक्तियों को भरने में हुये अत्यधिक विलम्ब की ओर दिलाया। सदस्य ने, अन्य बातों के साथ, इस तथ्य पर जोर दिया कि तीस वर्षों में पहली बार ऐसा हुआ कि दो सत्र गुजर गये, साढ़े तीन महीने बीत गये और स्थान खाली पड़े हैं; सामान्यत: 3 अप्रैल, 1982 को हो, जब निर्वाचन आयोग ने द्विवार्षिक चुनावों में निर्वाचित हुये नए सदस्यों के बारे में अधिसूचना जारी की थी, नामनिर्देशनों की घोषणा हो जानी चाहिये थी। अत: सदस्य चाहता था कि सरकार सभा में अपनी स्थिति स्पष्ट करे।[158] तथापि, नामनिर्देशन 27 सितम्बर, 1982 को हुए।

स्थानों का खाली होना

जिन स्थितियों और परिस्थितियों में कोई सदस्य सदन का सदस्य नहीं रहता और उसका स्थान खाली हो जाता है वे इस प्रकार हैं:

1. कोई सदस्य अयोग्य हो जाता है—

(क) यदि वह भारत सरकार के या किसी राज्य की सरकार के अधीन, ऐसे पद को छोड़कर जिसको धारण करने वाले का अयोग्य न होना संसद् ने विधि द्वारा घोषित किया है, कोई लाभ का पद धारण करता है;[159]

राज्य सभा के एक आसीन सदस्य श्री मोहनरंगम् की निरर्हता के संबंध में भारत के राष्ट्रपति ने संविधान के अनुच्छेद 103(2) के अधीन निर्वाचन आयोग से राय प्राप्त करने से संबंधित 1981 के निर्देश मामले संख्या 7 में लोक सभा के सदस्यों श्री सी॰टी॰ दंडपाणि और श्री सत्येन्द्रन् तथा अन्य व्यक्तियों ने तारीख 20 नवम्बर, 1981 की एक संयुक्त याचिका इस आधार पर प्रस्तुत की थी कि श्री मोहनरंगम् पर संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) में वर्णित निरर्हता लागू हो गई है क्योंकि वह नई दिल्ली में तमिलनाडु सरकार के विशेष प्रतिनिधि का पद धारण करते हैं। जांच के बाद निर्वाचन आयोग का यह निष्कर्ष था कि स्टाफ कार के उपयोग, तमिलनाडु भवन का कब्जा अपने पास रखने और टेलीफोन के उपयोग जैसे कुछ विशेषाधिकारों और लाभों का उपयोग करने के कारण विशेष प्रतिनिधि के पद के बारे में यह माना जाना चाहिए कि उससे लाभ प्राप्त हो सकता है और इस बात की युक्तियुक्त संभावना है कि पद धारण करने वाला व्यक्ति लाभ कमाएगा । इसके अतिरिक्त पद के धारक श्री मोहनरंगम् के लिये ये सुविधाएं ऐसी हैसियत और प्रतिष्ठा का प्रतीक हैं जो किसी संसद्-सदस्य के द्वारा सामान्यत: उपयोग में नहीं लाई जाती हैं । अत: आयोग की राय थी कि श्री मोहनरंगम् संविधान के अनुच्छेद 102(1)(क) के अधीन राज्य सभा का सदस्य होने के लिए इसलिए अयोग्य हो गए हैं क्योंकि वह नई दिल्ली में तमिलनाडु सरकार के विशेष प्रतिनिधि का ऐसा पद धारण करते हैं जिसे उक्त अनुच्छेद के प्रयोजन के लिए ''लाभ का पद'' माना जाएगा । भारत के राष्ट्रपति ने तद्नुसार 8 सितम्बर, 1982 को एक आदेश पारित किया।[160]

संविधान के अनुच्छेद 103(1) के अधीन श्रीमती जया बच्चन की कथित निरर्हता के संबंध में एक याचिका कानपुर के श्री मदन मोहन द्वारा राष्ट्रपति को प्रस्तुत की गई । उन्होंने निश्चयपूर्वक कहा कि राज्य सभा में उनके (श्रीमती बच्चन के) निर्वाचन के पश्चात् उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रीमती बच्चन को 14 जुलाई, 2004 से उत्तर प्रदेश फिल्म विकास परिषद् के अध्यक्ष के रूप में नियुक्त किया और इस प्रकार वह अनुच्छेद 102(1) के अर्थ के दायरे में लाभ का पद धारण करने लगीं। 2 मार्च, 2006 को निर्वाचन आयोग ने मत व्यक्त किया कि सदस्य उक्त परिषद् में अध्यक्ष के रूप में उनकी नियुक्ति की तारीख 14 जुलाई, 2004 से

अनुच्छेद 102(1) (क) के अधीन अयोग्य हो गईं । तद्नुसार, भारत के राष्ट्रपति ने अनुच्छेद 103(1) के अधीन श्रीमती जया बच्चन को 14 जुलाई, 2004 से राज्य सभा का सदस्य होने के लिए अयोग्य माने जाने का निर्णय किया ।[160क]

(ख) यदि उसे किसी सक्षम न्यायालय द्वारा विकृतचित्त घोषित कर दिया जाता है;

(ग) यदि वह अनुन्मोचित दिवालिया हो जाता है (अर्थात् ऐसा दिवालिया हो जाता है जो कानूनी तौर पर देनदारियां चुकाने के लिए बाध्य है);

(घ) यदि वह स्वेच्छा से किसी विदेशी राज्य की नागरिकता प्राप्त कर लेता है या वह स्वीकार करता है कि वह किसी विदेशी राज्य के प्रति निष्ठा रखता है या उससे जुड़ा हुआ है; या

(ङ) यदि वह दसवीं अनुसूची के अधीन अयोग्य है।

मई, 1989 और अगस्त, 1989 में सभापति को राज्य सभा के दो सदस्यों से दो अलग-अलग याचिकाएं प्राप्त हुईं जिनमें यह निवेदन किया गया था कि चूंकि मुफ्ती मोहम्मद सईद और श्री सत्यपाल मलिक ने उनके दल की सदस्यता स्वेच्छा से छोड़ दी है इसलिए उन्हें दसवीं अनुसूची और उसके अधीन बनाए गए नियमों के अंतर्गत अयोग्य घोषित कर दिया जाए। सभापति ने इन मामलों को प्रारंभिक जांच के लिए और उसके बारे में उन्हें प्रतिवेदन देने के लिए विशेषाधिकार समिति को सौंपा। तत्पश्चात् सभापति ने अपना निर्णय दिया कि संबंधित सदस्य अयोग्य हो गए हैं। निर्णयों की सभा में घोषणा की गई और उन्हें राज्य सभा संसदीय समाचार और भारत के राजपत्र में प्रकाशित किया गया।[161]

2. यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों का सदस्य चुन लिया जाता है किन्तु उसने दोनों में से किसी में अपना स्थान ग्रहण नहीं किया है तो वह, भारत के राजपत्र में इस घोषणा के प्रकाशन के दस दिनों के भीतर कि वह इस प्रकार चुना गया है, लिखित रूप से सूचना देगा कि वह किस सदन में सेवा करना चाहता है और ऐसा करने पर उसका उस सदन में वह स्थान, जिसमें वह सेवा नहीं करना चाहता, रिक्त हो जाता है। इस तरह दी गई सूचना अन्तिम होती है और उसे वापस नहीं लिया जा सकता। यदि वह ऐसी सूचना देने में विफल रहता है तो उस अवधि की समाप्ति के पश्चात् राज्य सभा में उसका स्थान खाली हो जाता है।[162]

3. यदि संसद् के एक सदन का सदस्य संसद् के दूसरे सदन का सदस्य चुन लिया जाता है तो पहले सदन में उस सदस्य का स्थान उस तारीख से रिक्त हो जाता है जिसको वह दूसरे सदन का सदस्य चुन लिया गया हो।[163]

भिन्न -भिन्न समयों पर राज्य सभा के जिन सदस्यों ने लोक सभा का सदस्य चुन लिए जाने पर राज्य सभा का अपना स्थान खाली कर दिया था उनकी संख्या इस प्रकार रही है:

1957 (दूसरी लोक सभा)–15; 1962 (तीसरी लोक सभा)–15; 1967-68 (चौथी लोक सभा)–14; 1971-72 (पांचवीं लोक सभा)–5; 1977 (छठी लोक सभा)–11; 1980 (सातवीं लोक सभा)–10; 1984 (आठवीं लोक सभा)–9; 1989 (नौवीं लोक सभा)–12; 1991 (दसवीं लोक सभा)–4; 1996 (ग्यारहवीं लोक सभा)–4; 1998 (बारहवीं लोक सभा)–9; 1999 (तेरहवीं लोक सभा)–4; और 2004 (चौदहवीं लोक सभा)–8।

1962 में एक सदस्य ने, जो लोक सभा के लिए निर्वाचित होने पर राज्य सभा का सदस्य नहीं रह गया था, यह मुद्दा उठाया कि राज्य सभा की उसकी सदस्यता की समाप्ति उस नई लोक सभा के गठन की तारीख को होनी चाहिए जिसके लिए वह निर्वाचित हुआ है और लोक सभा के लिए निर्वाचित होते ही तत्काल राज्य सभा की उसकी सदस्यता समाप्त नहीं होनी चाहिए। अत: विधि मंत्रालय को इस मुद्दे का निर्देश करते हुए यह सुझाव दिया कि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 68 में ''चुन लिया गया है'' शब्दों का सामान्य स्वाभाविक अर्थ लगाया जाना चाहिए और धारा 69 में, जो आसीन सदस्य से संबंधित है, जिस तारीख को कोई व्यक्ति दूसरे सदन का सदस्य चुन लिया जाता है वह इस प्रकार होनी

चाहिए: (क) आम चुनाव में निर्वाचित हुए किसी सदस्य के मामले में वह तारीख जिसको नई लोक सभा विधिवत् गठित समझी जाएगी या वह तारीख जिसको वह निर्वाचित हुआ हो, जो भी बाद में हो, और (ख) किसी अन्य निर्वाचित सदस्य के मामले में, अर्थात् किसी उप-चुनाव के मामले में, उसके निर्वाचन की तारीख, और कानून में तद्नुसार संशोधन किया जाना चाहिए। विधि मंत्रालय, अन्य बातों के साथ, निम्नलिखित कारणों से उपरोक्त सुझाव पर सहमत नहीं हुआ:

(i) ऐसा कोई विधिमान्य कारण प्रतीत नहीं होता जिससे ''चुन लिया जाता है'' शब्दों का सामान्य और स्वाभाविक अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए, चाहे आम चुनावों का मामला हो या उप-चुनावों का। हो सकता है कि आम चुनाव के बाद लोक सभा का गठन बाद में हो अर्थात् वह लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 73 के अधीन अधिसूचना के जारी किए जाने पर हो पर इससे यह तथ्य लुप्त नहीं हो सकता कि एक व्यक्ति पहले ही लोक सभा के सदस्य के रूप में ''चुन लिया गया'' है। यदि संविधान के निर्माताओं का इरादा इसके विपरीत होता तो उन्होंने अनुच्छेद 101(1) के दूसरे भाग में ''चुन लिया गया है'' शब्दों का प्रयोग ही नहीं किया होता।

(ii) सिद्धांत की दृष्टि से ''चुन लिया गया है'' शब्दों का अलग-अलग अर्थ लगाने का कोई कारण नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस सिद्धांत का अर्थ यह है कि संसद् के दोनों सदनों के प्रति किसी व्यक्ति की विभक्त निष्ठा नहीं हो सकती। इस तथ्य से कि एक सदन का कोई आसीन सदस्य दूसरे सदन का सदस्य चुना गया है, यह दिखाई देता है कि जिस सदन का वह आसीन सदस्य है उसके प्रति उसमें निष्ठा और लगाव नहीं है। ऐसे मामले में, वह उस सदन को, जिसका वह आसीन सदस्य है, जितनी जल्दी छोड़ दे उतना ही उस सदन के लिए और उस सदस्य के लिए भी अधिक अच्छा होगा क्योंकि किसी व्यक्ति को ऐसे सदन की एक दिन के लिए भी सेवा करने का अधिकार नहीं है जिसे वह पसंद नहीं करता। नए सदन के लिए उसके चुन लिए जाने से यह सिद्ध होता है कि उससे उसे प्रेम है और यह कल्पना करना संभव है कि उसके इस प्रेम का उसके उस सदन के प्रति दायित्व और कर्त्तव्य से टकराव हो सकता है, जिसका वह आसीन सदस्य है। संसद् का प्रत्येक सदस्य यह शपथ लेता है या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञान करता है कि वह ''जिस पद को ग्रहण करने वाला है उसके कर्त्तव्यों का श्रद्धापूर्वक निर्वहन करेगा।'' यदि कोई व्यक्ति निर्वाचित होने के बाद, उदाहरणस्वरूप, लोक सभा के लिए निर्वाचित होने के बाद राज्य सभा का सदस्य बना रहता है तो हो सकता है कि वह राज्य सभा के सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वहन न कर सके और उसके कारण अपने द्वारा ली गई शपथ या सत्यनिष्ठा से किए गए प्रतिज्ञान के विपरीत कार्य करें। यही कारण है कि अनुच्छेद 101(1) के दूसरे भाग में ''चुन लिया गया है '' शब्दों का प्रयोग किया गया है और लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की दोनों धाराओं अर्थात् धारा 68 और 69 में इन शब्दों का एक ही अर्थ लगाया गया है।

(iii) यह कल्पना करना संभव है कि दोनों सदनों के बीच टकराव की स्थिति पैदा हो सकती है। उदाहरण के लिए दो सदन किसी महत्वपूर्ण विधेयक पर असहमत हो सकते हैं और उनका राजनैतिक स्वरूप अलग-अलग हो सकता है। ऐसी स्थिति में यदि राज्य सभा के किसी आसीन सदस्य को, जो लोक सभा का सदस्य चुन लिया गया है, राज्य सभा का सदस्य बने रहने की अनुमति दी जाती है तो जिस सदन को उसने त्याग दिया है उसमें यदि वह मतदान करता है तो उससे आसानी से पलड़ा एक ओर झुक सकता है और उसके कारण राजनैतिक और संवैधानिक संकट उत्पन्न हो सकता है जिसके गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

(iv) यह कहा गया है कि यदि राज्य सभा का कोई आसीन सदस्य लोक सभा के लिए उसके निर्वाचन की तारीख को राज्य सभा का सदस्य नहीं रहता तो वह लोक सभा के विधिवत् गठित होने के पहले ही राज्य सभा की सदस्यता से रहित हो जाता है और इसके कारण वह राज्य सभा के ऐसे किसी सत्र में उपस्थित नहीं हो सकता जो लोक सभा के गठित होने तक के अंतराल में बुलाया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि यह एक असुविधा है किन्तु इसकी संभावना नहीं है कि यह बहुत भारी असुविधा होगी क्योंकि किसी भी स्थिति में यह अंतराल अधिक दिनों तक नहीं रहेगा। उपरोक्त सिद्धांतों को देखते हुए राज्य सभा के ऐसे किसी भी आसीन सदस्य को, जो लोक सभा का सदस्य चुन लिया गया है, इस थोड़ी-सी असुविधा को सहन करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होनी चाहिए।[64]

4. यदि कोई व्यक्ति सदन में एक से अधिक स्थान के लिए निर्वाचित हो गया है तो जब तक वह उन स्थानों में से केवल एक के अतिरिक्त अन्य सबसे अपना त्याग-पत्र चौदह दिन के अंदर नहीं दे देता है, वे सभी स्थान रिक्त हो जाते हैं।[65]

श्री मेहर चन्द खन्ना अप्रैल,1956 में दिल्ली से निर्वाचित हुए। बाद में वे 13 दिसम्बर, 1956 को पश्चिमी बंगाल से निर्वाचित हो गए। उन्होंने 15 दिसम्बर, 1956 को दिल्ली के अपने स्थान से त्याग-पत्र दे दिया । उन्होंने 17 दिसम्बर, 1956 को पश्चिमी बंगाल से निर्वाचित सदस्य के रूप में शपथ ली।[166]

श्री जगन्नाथ प्रसाद 27 फरवरी, 1965 को राजस्थान से निर्वाचित हुए और उन्होंने 3 मार्च, 1965 को शपथ ली। उस राज्य के एक अन्य स्थान के भरे जाने के लिए वे वहां से 9 मार्च, 1966 को पुन: निर्वाचित हुए। उन्होंने 21 मार्च, 1966 को अपने पहले स्थान से त्यागपत्र दे दिया और 22 मार्च, 1966 को बाद वाले स्थान के लिए शपथ ली।[167]

5. यदि कोई व्यक्ति राज्य सभा और किसी राज्य विधान-मंडल दोनों का सदस्य चुन लिया जाता है तो यदि वह भारत के राजपत्र अथवा राज्य के राजपत्र जो भी बाद में आये, में अपने निर्वाचन की घोषणा के प्रकाशित होने के चौदह दिनों की अवधि के अंदर राज्य विधान-मंडल के अपने स्थान से त्यागपत्र नहीं देता तो उस स्थिति में सदन में उसका स्थान रिक्त हो जाता है।[168]

श्री जय भद्र हेगजर नामक सदस्य 3 मार्च, 1962 को असम की विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हुए। 17 मार्च, 1962 को राज्य सभा में उनका स्थान रिक्त हो गया।

श्री एम॰ ए॰ एम॰ नाइकर 1 अप्रैल, 1964 को तत्कालीन मद्रास विधान परिषद् के लिए निर्वाचित हुए। 15 अप्रैल, 1964 को राज्य सभा में उनका स्थान रिक्त हो गया।

श्री एल॰ गनेशन् 28 मार्च, 1986 को तमिलनाडु विधान परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए । 10 अप्रैल, 1986 को राज्य सभा में उनका स्थान रिक्त हो गया।[169]

राज्य सभा के एक नामनिर्देशित सदस्य श्री गुलाम रसूल कार का स्थान 28 दिसम्बर, 1987 को रिक्त हो गया क्योंकि वे 14 दिसम्बर, 1987 को जम्मू-कश्मीर विधान परिषद् के लिए निर्वाचित हो गए थे।[170]

कर्नाटक से निर्वाचित सदस्य श्री डी॰ बी॰ चन्द्रे गौडा ने 14 दिसम्बर, 1989 को राज्य सभा में अपना स्थान खाली कर दिया क्योंकि वे 30 नवम्बर, 1989 को कर्नाटक विधान सभा के सदस्य निर्वाचित हो गए थे ।[171]

एक मुद्दा यह उठाया गया था कि क्या ऐसा सदस्य सदन की बैठकों में उपस्थित रहना जारी रख सकता है जो किसी राज्य में मंत्री नियुक्त हो गया हो । सभापति ने निर्णय दिया कि संबंधित मंत्री किसी भी निरर्हता के अधीन नहीं आता। निरर्हता का प्रश्न तभी उठ सकता है जब वह सदस्य किसी राज्य विधान-मंडल का सदस्य चुन लिया गया हो। ऐसे सदस्य द्वारा सभा की कार्यवाही में भाग लेने के औचित्य के प्रश्न पर सभापति ने निम्नलिखित टिप्पणी की:

> निस्संदेह यह कुछ विचित्र लगता है कि किसी राज्य में मंत्री नियुक्त हुआ कोई सदस्य राज्य सभा में उपस्थित हो और उसकी कार्यवाही में भाग ले। तथापि, मैं इसे सदस्य के विवेक पर छोड़ना चाहता हूँ ।[172]

6. यदि किसी सदस्य का निर्वाचन उच्च न्यायालय द्वारा शून्य घोषित कर दिया जाता है [173] तो उसका स्थान न्यायालय के आदेश के घोषित होते ही खाली हो जाता है।[174] जहां आदेश के प्रवर्तन पर रोक लगाई जाती है वहां यह समझा जाता है कि आदेश कभी भी प्रभावी नहीं हुआ।[175] जहां उच्चतम न्यायालय उक्त न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा होने तक अपील करने वाले सदस्य को उसके स्थान के बने रहने के लिए आवश्यक दिनों तक के लिए सदन में उपस्थित होने की अनुमति देता है, वहां उच्चतम न्यायालय के आदेश में वर्णित सीमाओं के अधीन रहते हुए सदस्य सदन का सदस्य बना रहता है।

22 दिसम्बर, 1960 को निर्वाचन अधिकरण, भोपाल ने मध्य प्रदेश से निर्वाचित सदस्य श्री के॰ पी॰ वर्मा के निर्वाचन को रद्द कर दिया और अपील करने पर बाद में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय ने उसे सही ठहराया।[176]

पंजाब से एक निर्वाचित सदस्य डा॰ अनूप सिंह का निर्वाचन 22 नवम्बर, 1962 को रद्द कर दिया गया था।[177]

मार्च, 1974 में हुए द्विवार्षिक चुनावों में श्री जॉन उर्फ वालमपुरी जॉन को तमिलनाडु राज्य से निर्वाचित घोषित

किया गया। तथापि, उनके निर्वाचन को मद्रास उच्च न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी गई कि उन्होंने अपने नामनिर्देशन को दाखिल करने की तारीख को संविधान के अनुच्छेद 84 की अपेक्षाओं के अनुसार तीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी। 14 अक्तूबर, 1974 को मद्रास उच्च न्यायालय ने राज्य सभा के लिए उनके निर्वाचन को शून्य घोषित कर दिया। इसके बाद श्री जॉन ने मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील की। उच्चतम न्यायालय ने 10 जनवरी, 1975 को कतिपय शर्तों पर एक पक्षीय रोक का आदेश दिया। 12 अप्रैल, 1977 को उच्चतम न्यायालय ने अपील खारिज कर दी और मद्रास उच्च न्यायालय के उस निर्णय को उचित ठहराया जिसमें श्री जॉन के निर्वाचन को इस आधार पर शून्य घोषित किया गया था कि उन्होंने नामनिर्देशनों की छानबीन की तारीख को तीस वर्ष की आयु पूरी नहीं की थी।[178]

उच्चतम न्यायालय ने 9 मई, 1980 को पंजाब से निर्वाचित श्री रघबीर सिंह गिल का निर्वाचन रद्द कर दिया था।[179]

गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने 7 नवम्बर, 1990 को श्री अमृतलाल बसुमतारी का निर्वाचन रद्द कर दिया था और उच्चतम न्यायालय ने 1 अगस्त, 1991 के अपने आदेश द्वारा उच्च न्यायालय के निर्णय को सही ठहराया।[180]

श्री शिबू सोरेन के निर्वाचन को पटना उच्च न्यायालय ने दिनांक 10 मई, 2000 के अपने आदेश द्वारा रद्द कर दिया। श्री सोरेन द्वारा की गई अपील पर उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 22 मई, 2000 के अपने आदेश द्वारा पटना उच्च न्यायालय के आदेश पर अमल किए जाने पर रोक लगा दी। उच्चतम न्यायालय ने दिनांक 19 जुलाई, 2001 के अपने निर्णय द्वारा श्री शिबू सोरेन के राज्य सभा में निर्वाचन को रद्द करने संबंधी पटना उच्च न्यायालय के निर्णय को सही ठहराया और श्री दयानन्द सहाय के पक्ष में उच्च न्यायालय द्वारा की गई घोषणा को उचित माना।[180क]

7. यदि कोई सदस्य भारतीय दंड संहिता के अधीन सिद्धदोष हो गया है या लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 125 या धारा 135 या धारा 136 में वर्णित निर्वाचन अपराधों का दोषी पाया गया है या वह उक्त अधिनियम के भाग–2 अध्याय 3 में वर्णित किसी अन्य निरर्हता से ग्रस्त हो जाता है तो ऐसे सदस्य का स्थान रिक्त हो जाता है।[181]

8. यदि कोई सदस्य सभा की अनुमति के बिना साठ दिन या उससे अधिक की अवधि के लिए सभा की सभी बैठकों से अनुपस्थित रहता है तो उसका स्थान रिक्त घोषित किया जा सकता है।[182]

एक सदस्य को अनुपस्थिति की अनुमति नहीं दी गई थी किन्तु इस आधार पर उसकी सदस्यता समाप्त करने के लिए सभा में कोई प्रस्ताव उपस्थित नहीं किया गया।[183]

एक अन्य सदस्य ने साठ दिन से अधिक अवधि के लिए अनुपस्थित होने पर भी अनुपस्थिति की अनुमति के लिए आवेदन नहीं किया किन्तु उसे अनुच्छेद 101(4) के अधीन उसकी सदस्यता समाप्त करने के लिए कोई कार्यवाही शुरू नहीं की गई।[184]

पंजाब से निर्वाचित एक सदस्य (श्री बरजिंदर सिंह हमदर्द) राज्य सभा की बैठकों से राज्य सभा के सभापति को अनुपस्थिति के लिए आवेदन किये बिना साठ दिनों से अधिक अनुपस्थित रहे। यह तथ्य राज्य सभा के महासचिव द्वारा सदन के नेता (श्री जसवंत सिंह) की जानकारी में लाया गया। बाद में संसदीय कार्य तथा सूचना प्रौद्योगिकी मंत्री (श्री प्रमोद महाजन) ने 21 दिसम्बर, 2000 को सभा में संविधान के अनुच्छेद 101(4) के अनुसरण में प्रस्ताव उपस्थित किया कि श्री बरजिंदर सिंह हमदर्द, जो सभा की सभी बैठकों से साठ दिन से अधिक अनुपस्थित रहे, के स्थान को रिक्त घोषित किया जाए। सभा द्वारा प्रस्ताव स्वीकृत किया गया। उक्त सदस्य का स्थान रिक्त होने की घोषणा करते हुए एक अधिसूचना भी जारी की गई।[185]

9. यदि सभा द्वारा किसी सदस्य के निष्कासन का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाता है तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

एक सदस्य के आचरण और गतिविधियों की जांच के प्रयोजन के लिए विशिष्ट रूप से नियुक्त की गई समिति के प्रतिवेदन के आधार पर सभा के नेता द्वारा उपस्थित तथा सदन द्वारा स्वीकृत किए गए एक प्रस्ताव द्वारा संबंधित सदस्य को अपने ऐसे आचरण के लिए सभा से निष्कासित किया गया जो सभा और उसके

सदस्यों की प्रतिष्ठा को गिराने वाला था और सदन अपने सदस्यों के आचरण में उनके द्वारा जिन मानदंडों के अनुसरण की अपेक्षा रखता है उन मानदंडों के अनुरूप नहीं था।[186]

10. यदि कोई सदस्य राष्ट्रपति के पद[187] के लिए या उपराष्ट्रपति के पद[188] के लिए निर्वाचित हो जाता है या किसी राज्य का राज्यपाल[189] नियुक्त किया जाता है तो जिस पद के लिए वह निर्वाचित या नियुक्त किया गया है, जैसी भी स्थिति हो, उसके ग्रहण कर लेने पर सदन में उसका स्थान रिक्त हो जाता है।

तीन सदस्य अर्थात् डा॰ ज़ाकिर हुसेन, हाफिज मुहम्मद इब्राहीम और श्री गोपाल स्वरूप पाठक क्रमशः बिहार, पंजाब और मैसूर के राज्यपाल नियुक्त किए गए थे। उन्होंने क्रमशः 6 अगस्त, 1957, 4 मई, 1964 और 13 मई, 1967 को पद ग्रहण किया। यद्यपि उन्होंने राज्य सभा की सदस्यता से त्यागपत्र नहीं दिया तथापि, वे इन तारीखों से राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे।

11. यदि कोई सदस्य सदन का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो जाता है तो उसका स्थान रिक्त हो जाता है।[190]

डा॰ एम॰ चेन्ना रेड्डी द्विवार्षिक चुनावों में राज्य सभा के लिए 3 अप्रैल, 1968 से आरंभ होने वाली पदावधि के लिए निर्वाचित हुए। इसके पहले वे फरवरी, 1967 में हुए चुनावों में आंध्र प्रदेश विधान सभा के लिए निर्वाचित हुए। इस निर्वाचन के संबंध में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि भ्रष्ट तरीके अपनाए जाने के आधार पर निर्वाचन अमान्य है। इसके बाद उच्चतम न्यायालय में अपील की गई और उसने भी उच्च न्यायालय के निर्णय को उचित ठहराया। ऐसा होने पर निर्वाचन आयोग ने सभी संबद्ध व्यक्तियों को सूचना दी कि डा॰ रेड्डी 26 अप्रैल, 1968 से, जो उच्च न्यायालय के निर्णय की तारीख थी, छह वर्षों के लिए संसद् या किसी राज्य विधान-मंडल का सदस्य होने के लिए अयोग्य हो गए हैं। अतः डा॰ रेड्डी उस तारीख से राज्य सभा के सदस्य नहीं रहे।

12. जब कोई सदस्य अपने स्थान से त्याग-पत्र देता है और उसका त्याग-पत्र सभापति द्वारा स्वीकृत हो जाता है तब वह त्याग-पत्र स्वीकार कर लिए जाने के बाद सदस्य नहीं रहता।[191]

मूलतः संविधान में पीठासीन अधिकारी द्वारा त्याग-पत्र स्वीकार किए जाने के लिए कोई उपबंध नहीं था। संविधान में पीठासीन अधिकारी द्वारा त्याग-पत्र स्वीकार किए जाने की आवश्यकता का उपबंध संविधान (तेंतीसवां संशोधन) अधिनियम, 1974 के द्वारा आरंभ किया गया था ताकि बलपूर्वक दिलाए गए त्याग-पत्रों पर अंकुश लग सके।

किसी सदस्य का त्याग-पत्र लिखित रूप में और उसके हस्ताक्षर-सहित होना चाहिए और वह सभापति को संबोधित होना चाहिए।[192] यदि कोई सदस्य सभापति को अपना त्याग-पत्र देता है और उसे सूचित करता है कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक और वास्तविक है और सभापति को इसके विपरीत कोई सूचना या जानकारी नहीं है तो सभापति त्याग-पत्र तुरंत स्वीकार कर सकता है।[193] यदि सभापति को डाक द्वारा या किसी अन्य व्यक्ति के माध्यम से त्याग-पत्र प्राप्त होता है तो सभापति अपनी संतुष्टि के लिए कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक और वास्तविक है, ऐसी जांच कर सकता है जैसी वह उचित समझे। यदि सभापति स्वयं या राज्य सभा सचिवालय या अन्य किसी अधिकरण के माध्यम से जिसे वह उचित समझे, संक्षिप्त जांच किए जाने के पश्चात् इस बात से सन्तुष्ट हो कि त्याग-पत्र स्वैच्छिक या वास्तविक नहीं है तो वह त्याग-पत्र स्वीकार नहीं भी कर सकता।[194]

त्याग-पत्र सदस्य द्वारा विनिर्दिष्ट तारीख से प्रभावी होता है, यदि उसे उस तारीख तक सभापति द्वारा स्वीकार कर लिया गया हो, और यदि कोई तारीख विनिर्दिष्ट नहीं की गई है तो वह त्याग-पत्र उस तारीख से प्रभावी होता है जब उसे सभापति द्वारा स्वीकार किया जाता है। सदस्य अपना त्याग-पत्र सभापति द्वारा उसे स्वीकृत किए जाने से पूर्व किसी समय वापस ले सकता है। यदि किसी सदस्य का त्याग-पत्र सभापति द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह सदस्य उसे वापस नहीं ले सकता।[195]

आंध्र प्रदेश से निर्वाचित एक सदस्य ने तारीख 1 नवम्बर, 1989 को एक पत्र भेजा, जो सचिवालय को 7 नवम्बर, 1989 को प्राप्त हुआ जिसमें उसने इस आधार पर राज्य सभा के अपने स्थान से त्याग-पत्र दिया था कि वह विधान सभा का चुनाव लड़ रहा है। यह समाधान करने के लिए कि क्या त्याग-पत्र स्वैच्छिक है, सदस्य से संपर्क करने का प्रयास किया गया। त्याग-पत्र पर निर्णय लिए जा सकने के पूर्व सदस्य स्वयं दिल्ली आया और उसने एक और पत्र दिया कि वह चुनाव हार गया है और वह राज्य सभा में बना रहना चाहता है और त्याग-पत्र वापस लेना चाहता है। सभापति ने इस अनुरोध को स्वीकार किया और सदस्य को अपना त्याग-पत्र वापस लेने की अनुमति दे दी गई।[196]

सभापति द्वारा त्याग-पत्र स्वीकार किए जाने के पश्चात् सदन को सूचित किया जाता है कि संबंधित सदस्य ने सदन में अपने स्थान से त्याग-पत्र दे दिया है और सभापति ने त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया है।[196क] यदि राज्य सभा का सत्र नहीं चल रहा हो तो जैसे ही वह पुन: समवेत होती है, यह सूचना उसे दे दी जाती है।[197]

सभापति द्वारा किसी सदस्य का त्याग-पत्र स्वीकार कर लिए जाने के बाद महासचिव यथाशीघ्र राज्य सभा संसदीय समाचार और भारत के असाधारण राजपत्र में इसकी सूचना प्रकाशित कराता है और राजपत्र में प्रकाशित अधिसूचना की एक प्रति निर्वाचन आयोग को भेजता है ताकि वह इस प्रकार हुई रिक्ति को भरने के लिए कार्यवाही करे। किन्तु जहां त्याग-पत्र भविष्य में किसी तारीख से लागू होना है, यह सूचना जिस तारीख से त्याग-पत्र लागू होना है उस तारीख से पूर्व संसदीय समाचार और राजपत्र में प्रकाशित नहीं की जाती।[198] सदस्य द्वारा त्याग-पत्र के जो कारण दिए जाते हैं उनकी सूचना सभा को नहीं दी जाती।

जब सभापति ने एक सदस्य के द्वारा त्याग-पत्र **दिए जा**ने की घोषणा की तब एक अन्य सदस्य ने पूछा ''क्यों दिया गया?'' सभापति ने कहा: ''यदि कोई सदस्य त्याग-पत्र देता है तो मैं उसका कारण नहीं पूछता।''[199] (ऐसा 1975 से पहले था।)

एक बार जब सभापति ने एक सदस्य के त्याग-पत्र की सूचना दी तब एक अन्य सदस्य यह जानना चाहता था कि क्या त्याग-पत्र देने वाले सदस्य ने कोई कारण दिए हैं। सभापति ने उत्तर दिया: ''नहीं''। एक अन्य सदस्य ने टिप्पणी की कि सभापति को अपना समाधान करना पड़ेगा कि त्याग-पत्र किसी दबाव में नहीं दिया गया है। अत: सदस्य यह जानना चाहता था कि क्या सभापति का समाधान हो गया है कि संबंधित सदस्य ने स्वेच्छा से त्याग-पत्र दिया है। सभापति ने कहा कि त्यागपत्र के स्वीकार कर लिए जाने के बाद वह अंतिम होता है और किसी सदस्य को सभापति के निर्णय के बारे में प्रश्न उठाने का अधिकार नहीं है। तथापि, इस त्याग-पत्र के बारे में उन्होंने स्पष्ट किया:

मेरा समाधान हो गया है। मुझे संविधान के उपबंधों की जानकारी है। मैंने समय लिया। मैंने सदस्य से संपर्क किया। मैंने त्याग-पत्र को तभी स्वीकार किया जब मेरा पूरी तरह से समाधान हो गया कि उन्होंने दबाव में आकर त्याग-पत्र नहीं लिखा। उनके हस्ताक्षर मौजूद हैं। हर चीज मौजूद है। मेरा समाधान हो गया है और यह अंतिम है।[200]

कोई सदस्य आवश्यक शपथ लेने या प्रतिज्ञान करने के पहले भी अपने स्थान से त्याग-पत्र दे सकता है।

राजस्थान से निर्वाचित सदस्य श्री हरिदेव जोशी ने 3 अप्रैल, 1958 से, जो उनकी पदावधि के आरंभ होने की तारीख थी, अपने स्थान से त्याग-पत्र दिया। उन्होंने शपथ नहीं ली और उनके त्याग-पत्र की कोई घोषणा नहीं की गई।

श्री एम॰ सी॰ छागला महाराष्ट्र से निर्वाचित हुए थे और उनकी पदावधि 2 अप्रैल, 1962 से आरंभ हुई थी। उन्होंने 17 अप्रैल, 1962 को त्याग-पत्र दे दिया।[201] उन्होंने शपथ नहीं ली थी।

श्री बी॰ डी॰ बेहरिंग मणिपुर से निर्वाचित हुए थे और उनकी पदावधि 10 अप्रैल, 1990 को प्रारंभ हुई थी। किन्तु उन्होंने शपथ लिए या प्रतिज्ञान किए बिना इसी तारीख को त्याग-पत्र दे दिया।[202]

कर्नाटक से चुनकर आईं सदस्या श्रीमती लीलादेवी रेणुका प्रसाद ने शपथ लेने/प्रतिज्ञान करने से पहले ही 22 अप्रैल, 1996 को त्याग-पत्र दे दिया। उनकी पदावधि 10 अप्रैल, 1996 से आरंभ हुई थी।[203]

वेतन, भत्ते, पेंशन तथा अन्य सुविधाएं

वेतन

संसद् के प्रत्येक सदन के सदस्य ऐसे वेतन और भत्ते के हकदार होते हैं जिन्हें संसद् समय-समय पर, विधि द्वारा निर्धारित करती है।[204] इस उपबंध के अनुसरण में संसद् ने संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 (1954 का 30) लागू किया। इसमें सदस्यों के वेतन आदि से संबंधित मुख्य उपबंध किए गये हैं किन्तु ब्यौरे को संसद् के दोनों सदनों के सदस्यों से मिलकर बनने वाली ऐसी संयुक्त समिति द्वारा तैयार किया जाता है जिसे दैनिक तथा यात्रा भत्ते और पेंशन के भुगतान को विनियमित करने के लिए केन्द्रीय सरकार से परामर्श करने के पश्चात् नियम बनाने का काम सौंपा गया है। ये नियम दोनों सदनों के पीठासीन अधिकारियों के द्वारा उनका अनुमोदन और पुष्टि किए जाने के अध्यधीन होते हैं।[205]

मंत्री या सदन के अधिकारी के सिवाय प्रत्येक सदस्य अपनी सम्पूर्ण पदावधि के दौरान सोलह हजार रुपये प्रतिमाह की दर से वेतन प्राप्त करने का हकदार है।[206] जब कोई सदस्य द्विवार्षिक चुनावों में निर्वाचित होता है या नामनिर्देशित होता है तब उसकी पदावधि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम, 1951 की धारा 71 के अधीन उसके निर्वाचन या नामनिर्देशन की शासकीय राजपत्र में अधिसूचना के प्रकाशन की तारीख से आरंभ होती है या जब वह किसी उप-चुनाव में निर्वाचित होता है या नामनिर्देशित होता है तो उसकी पदावधि लोक प्रतिनिधित्व अधिनियम की धारा 67क के अधीन निर्वाचन की तारीख से या नामनिर्देशन की तारीख से, जैसी भी स्थिति हो, आरंभ होती है[207] और यह पदावधि उस तारीख को समाप्त होती है जब उसका स्थान मृत्यु, पदत्याग, निवृत्ति या अन्य प्रकार से खाली हो जाता है।

निर्वाचन-क्षेत्र भत्ता

प्रत्येक सदस्य अपनी समस्त पदावधि के दौरान बीस हजार रुपये प्रतिमाह निर्वाचन-क्षेत्र भत्ते[208] और बीस हजार रुपये प्रतिमाह कार्यालय व्यय भत्ते[209] का हकदार होता है। जिनमें से चार हजार रुपये स्टेशनरी की वस्तुओं आदि पर व्यय के लिये; दो हजार रुपये पत्रों के वितरण (फ्रैंकिंग) पर व्यय के लिये और चौदह हजार रुपये सचिवीय सहायता के लिये होंगे।

दैनिक भत्ता

उपरोक्त मासिक वेतन और भत्तों के अलावा प्रत्येक सदस्य को कर्त्तव्य-पालन अवधि के लिए निवास हेतु[210] अर्थात् ऐसे स्थान पर निवास करने की अवधि के लिए प्रतिदिन एक हजार रुपये की दर से भत्ता मिलता है जहां सदन का सत्र होता है या समिति की कोई बैठक होती है या जहां सत्र में या समिति की बैठक में उपस्थित होने के लिए ऐसे सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों से संबंधित कोई अन्य कार्य किया जाता है[211] तथापि, जब तक कोई सदस्य उपस्थिति रजिस्टर में हस्ताक्षर नहीं करता तब तक वह इस भत्ते का हकदार नहीं होता।[212] दैनिक भत्ता सत्र के आरंभ से पहले के तीन दिनों और सभा के अनियत दिन के लिए स्थगित होने के बाद के तीन दिनों के दौरान या सात दिन से अधिक की अवधि के लिए दिया जाता है।[213] दैनिक भत्ता समिति की किसी बैठक या अन्य कार्य के मामले में समिति की बैठक या कार्य के आरंभ होने से पहले के दो दिनों और उसके स्थगित होने के बाद के दो दिनों के लिए दिया जाता है।[214]

सत्र/समिति की बैठक के लिए यात्रा भत्ता

यदि कोई सदस्य किसी सदन के सत्र या परामर्श समिति सहित किसी समिति की बैठक में उपस्थित होने या सदस्य के रूप में अपने कर्त्तव्यों से संबंधित किसी अन्य कार्य में सम्मिलित होने के प्रयोजन से अपने

सामान्य निवास-स्थान से कर्त्तव्य के स्थान पर जाता है और वहां से अपने सामान्य निवास-स्थान पर लौटता है तो इस यात्रा के लिए उसको निम्नलिखित दरों पर यात्रा भत्ता लेने का हक होता है:

(क) **रेल द्वारा यात्रा:** ऐसी प्रत्येक यात्रा के लिए एक प्रथम श्रेणी के साथ एक द्वितीय श्रेणी के भाड़े के बराबर राशि, चाहे सदस्य ने वस्तुत: किसी भी श्रेणी में यात्रा की हो;[215]

(ख) **विमान द्वारा यात्रा:** प्रत्येक यात्रा के लिए विमान-यात्रा भाड़े के सवा गुना के बराबर राशि;[216]

(ग) **स्टीमर द्वारा यात्रा:** प्रत्येक ऐसी यात्रा या उसके भाग के लिए स्टीमर में सर्वोच्च श्रेणी के भाड़े (भोजन के बिना) की $1\frac{3}{5}$ गुणा राशि के बराबर;[217] और

(घ) **सड़क द्वारा यात्रा:** प्रत्येक किलोमीटर के लिए तेरह रुपये की दर से सड़क मील भत्ता जिसमें सदस्य के सामान्य निवास-स्थान या नई दिल्ली के निवास-स्थान या किसी समिति की बैठक के स्थान से रेलवे स्टेशन पहुंचने और वहां से वापस आने, पत्तन या हवाई अड्डा पहुंचने और वहां से वापस आने के लिए की गई यात्रा शामिल है[218] तथापि, दिल्ली में सड़क द्वारा यात्रा के लिए हवाई अड्डा जाने और वहां से वापस लौटने के लिए की गई प्रत्येक यात्रा के लिए कम से कम एक सौ बीस रुपये दिए जाते हैं।[219]

सत्र/समिति की बैठक के दौरान मध्यवर्ती यात्रा

कोई सदस्य सत्र या किसी समिति की किसी बैठक के बीच में 15 दिन से कम की कोई मध्यवर्ती यात्रा करता है तो उसकी हकदारी को इस प्रकार विनियमित किया जाता है:

(क) **रेल द्वारा यात्रा:** सदस्य को प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए मेल गाड़ी से एक प्रथम श्रेणी भाड़ा या सत्र या बैठक के स्थान में उसकी अनुपस्थिति के दिनों के लिए दिया जा सकने वाला भत्ता, जो भी कम हो, दिया जाता है।

(ख) **विमान द्वारा यात्रा:** सदस्य को प्रत्येक ऐसी यात्रा के लिए एक विमान-यात्रा भाड़े के बराबर राशि दी जाती है।

किसी वर्ष के दौरान विमान यात्राएं

प्रत्येक सदस्य एक वर्ष के दौरान ऐसी चौंतीस एकल विमान-यात्राओं (अर्थात् एक विमान-यात्रा भाड़ा) का हकदार होता है जो उसने भारत के किसी स्थान से किसी दूसरे स्थान तक अकेले या साथी या पति/पत्नी या जितने भी साथियों अथवा संबंधियों के साथ की हों। यह वर्ष सदस्य की पदावधि के आरंभ होने की तारीख से और बाद के हर वर्ष से आरंभ होता है। ये विमान-यात्राएं उन मध्यवर्ती यात्राओं के अतिरिक्त हैं जो कोई सदस्य सत्र के दौरान या समिति की बैठकों के दौरान कर सकता है।[220] यदि किसी वर्ष के दौरान किसी सदस्य द्वारा की गई विमान-यात्राओं की संख्या चौंतीस से कम है, उसके द्वारा न की गई यात्राओं की संख्या अगले वर्ष को अग्रणीत कर दी जाएंगी।[221]

सत्र/संसदीय समितियों की बैठकों के छोटे अंतरालों के लिए भत्तों का भुगतान

यदि एक ही स्थान पर सभा या समिति की बैठक के स्थगन और सभा के पुन: समवेत होने/समिति की अगली बैठक के होने के बीच का अंतराल सात दिनों से अधिक नहीं है और सदस्य इस अंतराल के दौरान उस स्थान पर ठहरा होता है तो उसे उस अवधि के लिए दैनिक भत्ता दिया जाता है। यदि वह इस अवधि के

दौरान कोई यात्रा करता है तो उसे उतना यात्रा-भत्ता दिया जाता है जितना वह मध्यवर्ती यात्रा के लिए हकदार है।[222]

जब सभा के स्थगन और उसके पुन: आरंभ होने के बीच का अंतराल सात दिनों से अधिक होता है तो सदस्य को निम्नलिखित भत्ते दिए जाते हैं:

(1) सभा के स्थगन के बाद वापसी की यात्रा के लिए यात्रा भत्ता;

(2) सभा के पुन: आरंभ होने पर उसमें उपस्थित होने के लिए अग्र यात्रा (फॉरवर्ड जर्नी) के लिए यात्रा भत्ता; और

(3) सभा के स्थगन के ठीक बाद के तीन दिनों के लिए दैनिक भत्ता, यदि सदस्य इस अवधि के दौरान दिल्ली में वस्तुत: रहता है।

सभा के पुन: आरंभ होने के ठीक पहले के तीन दिनों के लिए दैनिक भत्ता नहीं दिया जाता। जब संसद् की कोई सभा बजट सत्र के दौरान एक निश्चित अवधि के लिए स्थगित की जाती है तो विभाग-संबंधित स्थायी समिति की दो बैठकों के बीच सात दिनों से अनधिक अंतराल के दौरान विमान द्वारा भारत के किसी स्थान के लिए की गई प्रत्येक यात्रा के संबंध में यात्रा-भत्ता प्राप्त करने का हकदार होगा, बशर्ते कि विमान किराया को छोड़कर वह यात्रा-भत्ता दैनिक भत्ते की उस कुल राशि से अधिक न हो जो उस सदस्य को अनुपस्थिति के दिनों के लिए मान्य होता, यदि वह अनुपस्थित नहीं रहा होता।[223]

सभा/समिति के आस्थगन या अचानक स्थगन की स्थिति में यात्रा-भत्ता

किसी ऐसे सदस्य को जो उस स्थान पर जहां सदन का सत्र अथवा समिति की बैठक होती है, सत्र या बैठक के स्थगित होने के बारे में जाने बिना पहुंच जाता है, यात्रा-भत्ता मिल सकने के बारे में राज्य सभा के सभापति द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों के आधार पर निर्णय किया जाता है। परामर्श समिति की आस्थगित बैठक के लिए यात्रा-भत्ता दिए जाने के बारे में संसदीय कार्य मंत्री द्वारा निर्णय किया जाता है। किन्तु ऐसे मामले में कोई दैनिक भत्ता नहीं दिया जाता।[224]

विदेश यात्रा के लिए यात्रा-भत्ता

यदि कोई सदस्य भारत के बाहर अपने कर्त्तव्यों के पालन के लिए विदेश यात्रा करता है तो वह नियमानुसार यात्रा-भत्ते का हकदार होता है।[225]

रेल यात्रा सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य को, निर्वाचन/नामनिर्देशन होने पर, एक पहचान पत्र-सह-रेल पास दिया जाता है। यह पत्र अहस्तांतरणीय होता है। इससे वह भारत की किसी रेलवे द्वारा किसी भी समय वातानुकूलित प्रथम श्रेणी या एक्जीक्यूटिव क्लास में और वातानुकूलित दो टीयर वाले यान में एक साथी सहित यात्रा करने का हकदार होता है।

जब तक किसी सदस्य को पहचान पत्र-सह-रेल पास नहीं दिया जाता तब तक वह संसद्-सदस्य के रूप में उसके कर्त्तव्यों के संबंध में उसके द्वारा की गई किसी भी यात्रा के लिए एक वातानुकूलित प्रथम श्रेणी अथवा एक्जीक्यूटिव क्लास के रेल भाड़े के बराबर राशि का हकदार होता है। इसी प्रकार जो सदस्य, सदस्य न रहने पर अपने पास को वापस कर देता है और सत्र या समिति की बैठक में उपस्थित होने के बाद रेल

द्वारा वापसी यात्रा करता है, वह उस यात्रा के लिए एक वातानुकूलित प्रथम श्रेणी या एक्जीक्यूटिव क्लास रेल भाड़े के बराबर राशि का हकदार होता है।[226]

पति/पत्नी के लिए यात्रा सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य को, निर्वाचित/नामनिर्देशित होने पर, अपनी पत्नी/पति के लिए अलग-अलग रेल पास जारी किए जाते हैं। इसके द्वारा उसका पति/पत्नी प्रत्येक सत्र में एक बार और बजट सत्र में दो बार, सदस्य के सामान्य निवास-स्थान से दिल्ली और दिल्ली से उसके सामान्य निवास-स्थान की यात्रा के लिए किसी भी रेलगाड़ी के प्रथम श्रेणी वातानुकूलित यान या एक्जीक्यूटिव क्लास में अथवा विमान द्वारा अथवा आंशिक रूप से रेलगाड़ी से और आंशिक रूप से विमान द्वारा यात्रा करने का हकदार हो जाता/हो जाती है, बशर्ते कि दिल्ली के लिए या वापसी की ऐसी प्रत्येक यात्रा की कुल संख्या किसी वर्ष में आठ से अधिक नहीं होनी चाहिए।[227] अग्र यात्रा सत्र के लिए आह्वान जारी होने के बाद की जा सकती है और वापसी यात्रा अगले सत्र के आरंभ होने के पहले किसी भी समय की जा सकती है।[228]

आवास सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य अपने पूरे कार्यकाल तक लाइसेंस फीस दिए बिना फ्लैट के रूप में आवास की नि:शुल्क सुविधा का हकदार होता है। आवास का आवंटन आवास समिति द्वारा किया जाता है जो किसी विशिष्ट श्रेणी के आवास के लिए चाहे वह बंगला हो या फ्लैट हो, सदस्य की हकदारी के बारे में भी निर्णय करती है।

कोई सदस्य उसे आवंटित आवास को अपनी निवृत्ति या अपने पदत्याग के बाद एक महीने की अधिकतम अवधि तक रख सकता है। यदि किसी सदस्य की मृत्यु हो जाए तो उसका परिवार सदस्य की मृत्यु की तारीख से दो महीने की अवधि तक आवास को सामान्य किराये पर रख सकता है।[229]

बिजली और पानी की सुविधाएं

सदस्य के निवास पर प्रतिवर्ष बिजली के 50,000 यूनिटों (लाइट मीटर पर मापे गए 25,000 यूनिट और पावर मीटर पर मापे गए 25,000 यूनिट) और पानी के 4000 किलोलीटरों की अधिकतम सीमा तक बिजली और पानी की नि:शुल्क सप्लाई की जाती है।[230]

टेलीफोन सुविधाएं

प्रत्येक सदस्य अपनी पदावधि के दौरान दो टेलीफोन कनेक्शनों का हकदार होता है—एक उसके दिल्ली निवास या कार्यालय में और दूसरा उसके राज्य या निर्वाचन-क्षेत्र में किसी भी स्थान पर। उसे इन टेलीफोनों को लगाने के प्रभारों या उसके किराए संबंधी प्रभारों का भुगतान नहीं करना पड़ता। एक वर्ष के दौरान दोनों टेलीफोनों से की गई पहली 1,00,000 स्थानीय कॉलें, सम्मिलित रूप से नि:शुल्क होती हैं। इसके अलावा जिस सदस्य का निर्वाचन क्षेत्र दिल्ली से 1000 किलोमीटर दूर हो, उसे प्रत्येक टेलीफोन के लिए 10,000 अतिरिक्त कॉल की अनुमति दी जाएगी।[231] सदस्य के ट्रंक कॉल बिलों को 1,00,000 स्थानीय कॉलों की अधिकतम सीमा के बराबर धनराशि के भीतर समायोजित किया जा सकता है। अतिरिक्त कॉलें अगले वर्ष के कोटे के साथ समायोजित की जा सकती हैं।

प्रत्येक सदस्य दिल्ली/नई दिल्ली में अपने निवास पर अथवा अपने सामान्य निवास स्थान या राज्य के भीतर उसके द्वारा चुने गए स्थान पर या जिस राज्य में वह रहता/रहती है उस राज्य में एक अतिरिक्त टेलीफोन और इंटरनेट कनेक्टिविटी के प्रयोजन के वर्ष के दौरान 50,000 नि:शुल्क स्थानीय कॉलों का भी हकदार

है।[232] उनके अनुरोध पर महानगर टेलीफोन निगम लिमिटेड, नई दिल्ली द्वारा प्रदान किए गए एक मोबाइल फोन के रजिस्ट्रीकरण और किराया प्रभार के संबंध में किसी शुल्क का भुगतान नहीं करना पड़ेगा और सदस्य द्वारा उस मोबाइल फोन से की गई कॉलें उन्हें उपलब्ध कुल नि:शुल्क कॉलों में से समायोजित की जाएंगी।[233]

ब्रॉडबैंड इंटरनेट सेवा

प्रत्येक सदस्य को उपलब्ध प्रतिवर्ष 1,50,000 नि:शुल्क स्थानीय कॉलों के कोटे में से 10,000 स्थानीय कॉलों के बदले में 512 के॰बी॰पी॰एस॰ की गति वाली ब्रॉडबैंड इंटरनेट सुविधा सदस्यों को प्रदान की गई है जिसमें 100 जी॰बी॰ की नि:शुल्क डाउनलोड की अधिकतम सीमा है।[233क]

जब कभी कोई सदस्य निवृत्त होता है या सदस्य नहीं रहता, उसकी सदस्यता के दौरान उसे दिए गए दो टेलीफोन कनेक्शनों में से एक को 'निजी ग्राहक श्रेणी' के अन्तर्गत स्थायी टेलीफोन कनेक्शन के रूप में निजी खाते में परिवर्तित करने की अनुमति दी जा सकती है। परन्तु यह अनुमति तब होगी जब उसने एक संसद् सदस्य/विधान सभा सदस्य/विधान परिषद् सदस्य आदि के रूप में इस प्रकार का कोई कनेक्शन पहले न लिया हो और साथ ही उसके पास उस स्टेशन पर अपने नाम पर कोई दूसरा स्थायी टेलीफोन कनेक्शन पहले से न हो। दूसरे टेलीफोन कनेक्शन के लिए सदस्य को एक सामान्य ग्राहक के रूप में सभी औपचारिकताएं पूरी करनी पड़ती हैं।

किसी सदस्य की मृत्यु होने की स्थिति में उसका परिवार टेलीफोन को दो महीने तक रख सकता है।

चिकित्सा सुविधाएं

दिल्ली में केन्द्रीय सरकार के प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों के लिए केन्द्रीय सरकार स्वास्थ्य योजना जिस रूप में लागू है, उसी रूप में वह संसद्-सदस्यों और उनके परिवार के सदस्यों पर भी के॰स॰स्वा॰यो॰ नियमों के अनुसार लागू की गई है।[234]

विदेशी मुद्रा

प्रत्येक सदस्य को अपने पूरे कार्यकाल के दौरान अध्ययन के लिए विदेश यात्रा हेतु एक लाख रुपये की विदेशी मुद्रा प्राप्त करने का हक है। आवेदन करने पर वह सचिवालय द्वारा उपलब्ध कराई जाती है।[235]

भूतपूर्व सदस्य या उसके आश्रित को पेंशन

प्रत्येक भूतपूर्व सदस्य, संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954 के अनुसार पेंशन प्राप्त करने का हकदार है। पेंशन की वर्तमान दर 8000 रुपये प्रतिमास है और पांच वर्ष की कुल सेवा के बाद प्रत्येक अतिरिक्त वर्ष के लिए 800 रुपये प्रति मास और दिए जाते हैं। यह पेंशन किसी अन्य पेंशन के अतिरिक्त है जो किसी भूतपूर्व सदस्य को प्राप्त हो। यदि किसी आसीन सदस्य की मृत्यु हो जाती है तो उसकी पत्नी/पति या आश्रित को उस पेंशन की आधी राशि के बराबर परिवार पेंशन का भुगतान किया जाता है जो उस सदस्य को अन्यथा प्राप्त होती।[236]

टिप्पणियां और संदर्भ

1. संविधान (सोलहवां संशोधन) अधिनियम, 1963 द्वारा अंत:स्थापित
2. निर्वाचन आयोग अधिसूचना सं॰ का॰आ॰ 1111, दिनांक 18.3.1968, असाधारण राजपत्र भाग-2, 3 (ii), मैन्युअल ऑफ इलेक्शन लॉ, वोल्यूम 1
3. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 36(2)(क)
4. अनुच्छेद 84(ग)
5. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 3, ''उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र में'' शब्दों के स्थान पर लो॰ प्र॰ (संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा ''भारत में'' शब्दों को प्रतिस्थापित किया गया।
6. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1950, धारा 19

7. रावन्ना सुबन्ना **बनाम** जी॰एस॰ कग्गेरप्पा, ए आई आर 1954, एस सी 653; अब्दुल शकूर **बनाम** रिखब चन्द, ए आई आर 1958, एस सी 52; गुरू गोबिन्द बसु **बनाम** शंकरी प्रसाद घोषाल, ए आई आर 1964, एस सी 254; उमराव सिंह **बनाम** दरबारा सिंह, ए आई आर 1969, एस सी 262; डी॰आर॰ गुरूसंतप्पा **बनाम** अब्दुल, ए आई आर 1969, एस सी 744; कान्ता **बनाम** मानक चन्द, ए आई आर 1970, एस सी 694; शिवमूर्ति स्वामी इनामदार आदि **बनाम** अगाड़ी, 1971 (3), एस सी 870; भगवानदास सहगल **बनाम** हरियाणा राज्य तथा अन्य, ए आई आर 1974, एस सी 2355; करभारी **बनाम** शंकर, ए आई आर 1975, एस सी 575; दिव्य प्रकाश **बनाम** कुलतार चन्द राणा, ए आई आर 1975, एस सी 1067; मधुकर **बनाम** जसवन्त छबीलदास राजानी तथा अन्य, ए आई आर 1976, एस सी 2283; बिहारीलाल **बनाम** रोशनलाल, ए आई आर 1984, एस सी 385; सत्रुचार्ला **बनाम** वाइरीचोर्ला, ए आई आर 1992, एस सी 1959; ए॰के॰ सुब्बैय्या **बनाम** रामकृष्ण हेगडे, ए आई आर 1994, कर्नाटक 35
8. जेसीओपी–10आर, 7 एल एस, पैरा 10.5 और 10.6
9. कान्ता **बनाम** मानक चन्द, ए आई आर 1970, एस सी 694; इबोम्चा **बनाम** चन्द्रमणि, ए आई आर 1977, एस सी 682
10. भगवानदास **बनाम** हरियाणा राज्य, ए आई आर 1974, एस सी 2355
11. कॉफी अधिनियम, 1942, धारा 4(5)
12. रबड़ अधिनियम, 1947, धारा 4(8)
13. चाय अधिनियम, धारा 4 (3क)
14. तम्बाकू बोर्ड अधिनियम, 1975, धारा 4 (4क)
15. मसाला बोर्ड अधिनियम, 1986, धारा 3 (4)
16. वक्फ अधिनियम, 1995, धारा 3
17. प्रेस परिषद् अधिनियम, 1978, धारा 7 (3)
18. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 8(1) (क)–(ट)
19. –वही– धारा 8(2)
20. –वही– धारा 8(3)
21. –वही– धारा 8(4)
22. –वही– धारा 8क(1)
23. –वही– धारा 9(1)
24. –वही– धारा 9क
25. –वही– धारा 10
26. –वही– धारा 10क
27. फाइल सं॰ 10/91–टी और 10/96–टी
28. अनुच्छेद 103, लो॰ प्र॰ अधिनियम की धारा 8क के साथ पठित और निर्वाचन आयोग **बनाम** साका वेंकट राव, ए आई आर 1953, एस सी 210
29. विधि तथा न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), अधिसूचना सा॰ का॰ नि॰ 131(अ) 1.3.85, असाधारण राजपत्र 2(i), 1.3.1985 में प्रकाशित
30. दसवीं अनुसूची पैरा 2(1), (क) और 2(1)(ख), स्पष्टीकरण (क) के साथ पठित
31. –वही– पैरा 2(2)
32. –वही– पैरा 2(3)
33. –वही– पैरा 2(1), स्पष्टीकरण (ख)

34. दसवीं अनुसूची पैरा 4 और संविधान (इक्यानवेवां संशोधन) अधिनियम, 2003
35. –वही– पैरा 4(2)
36. –वही– पैरा 4(1)
37. –वही–
38. –वही– पैरा 4(2)
39. –वही– पैरा 5
40. –वही– पैरा 6(1)
41. –वही– पैरा 6(2)
42. –वही– पैरा 7
43. किहोता होल्लोहोन **बनाम** जाचिल्हू, ए आई आर 1993, एस सी 412
44. दसवीं अनुसूची, पैरा 8
45. फाइल सं॰ 46/85–टी
46. अधिसूचना सं॰ आर एस 46(ii)/86–टी, 18.3.1986
47. भारत का असाधारण राजपत्र, भाग–1, खंड (i), 18.3.1986 और संसदीय समाचार (2), 18.3.1986
48. राज्य सभा सदस्य (दल परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 3(1)
49. –वही– नियम 3(1) और (2)
50. –वही– नियम 3(2) और (3)
51. –वही– नियम 3(4)
52. –वही– नियम 3(5)
53. –वही– नियम 4(1) और (2)
54. –वही– नियम 4(3), सूचना के सारांश के लिए **देखिये** संसदीय समाचार (2), 19.8.1986, 10.8.1989
55. –वही– नियम 6
56. –वही– नियम 7(1), (2) और (3)
57. राज्य सभा सदस्य (दल–परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 7(4)
58. –वही– नियम 7(5)
59. संसदीय समाचार (2), 7.11.1989
60. फाइल संख्या 46/89–टी–वोल्यूम 4
61. राज्य सभा सदस्य (दल–परिवर्तन के आधार पर निरर्हता) नियम, 1985, नियम 7(7)
62. –वही– नियम 8
63. अनुच्छेद 80(4) और (5), लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1950, धारा 27क और 27 (ज) के साथ पठित

63क. लो॰ प्र॰ (संशोधन) अधिनियम, 2003 द्वारा अंत:स्थापित

64. अध्याय–2 के अंतर्गत **देखिये**
65. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1950, धारा 27छ
66. –वही– धारा 27ञ
67. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 12

68. पशुपति नाथ सुकुल **बनाम** नेम चन्द्र जैन तथा अन्य, ई एल आर, वोल्यूम 74, पृष्ठ 83-93
69. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 29
70. -वही- धारा 39
71. -वही- धारा 31
72. -वही- धारा 32
73. -वही- धारा 33(1), धारा 39(2), परंतुक (कक) के साथ पठित; धारा 33(7) (घ) जैसाकि 1996 के अधिनियम 21 द्वारा जोड़ा गया
74. -वही- धारा 39, परंतुक (कक)
75. -वही- धारा 39, परंतुक (क), धारा 152 के साथ पठित
76. पशुपति नाथ सुकुल **बनाम** नेम चन्द्र जैन तथा अन्य, ई एल आर, वोल्यूम 74, पृष्ठ 83–93
77. पशुपति नाथ सिंह **बनाम** हरिहर प्रसाद सिंह, ए आई आर 1968, एस सी 1064
78. विरजी राम सुतारिया **बनाम** नाथालाल प्रेमजी भानवाडिया, ए आई आर 1970, एस सी 765
79. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 34(1)(ख)
80. -वही- धारा 34(2)
81. -वही- धारा 33(6) और 34(1), परंतुक
82. -वही- धारा 36(2)
83. -वही- धारा 36(4)
84. -वही- धारा 37(1)
85. -वही- धारा 37(2)
86. -वही- धारा 38
87. -वही- धारा 53(1) और (2)
88. -वही- धारा 56
89. -वही- धारा 64
90. -वही- धारा 66
91. -वही- धारा 67
92. -वही-
93. -वही- धारा 67क
94. निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 85
95. लो॰ प्र॰ अधिनियम, धारा 71
96. -वही- धारा 147 और 151क
97. -वही- धारा 100 और 101
98. -वही- धारा 81
99. 'द सिंगल ट्रांसफरेबल वोट', लेखक: के॰ वी॰ कृष्णास्वामी अय्यर, 1946 संस्करण, पृष्ठ 23

100. निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 71(4)
101. –वही– नियम 75(1)
102. –वही– नियम 76
103. निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 83 तथा अनुसूची
104. –वही– नियम 73(2)
105. –वही– नियम 78
106. –वही– नियम 79(1)
107. –वही– नियम 76(1)
108. –वही– नियम 79(2) और (3)
109. –वही– नियम 71(5)
110. –वही– नियम 79(4)(क)
111. –वही– नियम 71(3)
112. –वही– नियम 79(4)
113. –वही– नियम 79(5) से (7)
114. –वही– नियम 80(1)
115. –वही– नियम 80(2)
116. –वही– नियम 80(3)
117. –वही– नियम 80(5)
118. –वही– नियम 80(6)
119. –वही– नियम 81(1)
120. –वही– नियम 81(2)
121. –वही– नियम 81(3)
122. अनुच्छेद 80(3)
123. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 155(2)
124. फाइल सं॰ 17/94–टी
125. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 154
126. अनुच्छेद 54 तथा संविधान (सत्तरवां संशोधन) अधिनियम, 1992 द्वारा उसमें जोड़ा गया स्पष्टीकरण
127. अनुच्छेद 66(1)
128. ब्यौरे के लिए अध्याय-4 **देखिए**
129. दसवीं अनुसूची, पैरा 2(3)
130. राज्य सभा वाद-विवाद, 16.5.1952, कालम 46
131. लोक सभा वाद-विवाद (2), 6.6.1952, कालम 1245–47
132. –वही– 20.6.1952, कालम 2237
133. रिपोर्ट ऑफ द ज्वॉइन्ट कमिटी ऑन पेमेंट ऑफ सैलरी एंड ऐलाउन्सेज टु एंड एब्रीवियेशन्स फॉर मेम्बर्स ऑफ पार्लियामेंट, जुलाई, 1952, कार्यवृत्त (मिनिट्स)

134. रिपोर्ट ऑफ द ज्वॉइन्ट कमेटी ऑन पेमेंट ऑफ सेलरी एंड ऐलाउन्सेज टु एंड एब्रीवियेशन्स फॉर मेम्बर्स ऑफ पार्लियामेंट, जुलाई, 1952, कार्यवृत्त (मिनिट्स)

135. –वही– पैरा 15

136. अनुच्छेद 83(1)

137. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 154(1)

138. –वही– धारा 154(3)

139. –वही– धारा 155(1)

140. –वही– धारा 155(2)

141. विधि मंत्रालय अधिसूचना सं॰ एफ॰ 10(15)/52सी, 3.4.1952, असाधारण राजपत्र [I(i)], सेक्शन 1, 3.4.1952 में प्रकाशित

142. विधि मंत्रालय अधिसूचना सं॰ एस आर ओ 1669, 6.9.1952, असाधारण राजपत्र [ii(iii)] विधि मंत्रालय अधिसूचना

143. निर्वाचन आयोग अधिसूचना सं॰ 35/52–निर्वा॰ III, 12.11.1952, फाइल सं॰ सी एस 35/52–एल

144. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1950, धारा 27झ, अब निरसित

145. निर्वाचन आयोग अधिसूचना सं॰ 35/52–निर्वा॰ III, 29.11.1952, राजपत्र [I(ii)], 29.11.1952; फाइल सं॰ सी एस 35/52–एल

146. आंध्र राज्य अधिनियम, 1953, धारा 10, 10(2) (क) और (ख)

147. संसदीय समाचार (2), 15.12.1953 और 23.12.1953

148. विधि मंत्रालय अधिसूचना का नि–आ॰ सं॰ 2537, 1.11.1956, राजपत्र [II(iii)], 3.11.1956

149. राज्य पुनर्गठन अधिनियम, 1956, धारा 24–26

150. संसदीय समाचार (2), 15.11.1956 और 20.11.1956

151. संसदीय समाचार (2), 19.12.1956 और 21.12.1956

152. बम्बई पुनर्गठन अधिनियम, 1960, धारा 9

153. पंजाब पुनर्गठन अधिनियम, 1966, धारा 10–11; संसदीय समाचार, 8.12.1966

154. रिपोर्ट ऑफ द इलेक्शन कमीशन, 1986–87, पृष्ठ 29

155. फर्स्ट एन्युअल रिपोर्ट ऑफ द इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया, 1983, पृष्ठ 50, 56

156. निर्वाचन सुधारों संबंधी समिति का प्रतिवेदन (1990), पैरा 13

157. राज्य सभा वाद–विवाद, 25.2.1966, कालम 1404–05

158. –वही– 20.7.1982, कालम 279–80

159. अनुच्छेद 102(1)(क)

160. विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्रालय (विधायी विभाग) अधिसूचना का॰ आ॰ सं॰ 654(अ), 8.9.1982; संसदीय समाचार (2), 29.9.1982

160क. संसदीय समाचार (2), 18.3.2006; श्रीमती जया बच्चन को जून, 2006 में उत्तर प्रदेश राज्य से पुनः निर्वाचित किया गया। उन्होंने 24 जुलाई, 2006 को सभा में शपथ ली और अपना स्थान ग्रहण किया

161. संसदीय समाचार (2), 15.5.1989, 28.7.1989 और संसदीय समाचार (1), 9.8.1989; संसदीय समाचार (2), 14.9.1989

162. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 68

163. –वही– धारा 69

164. फाइल सं॰ आर एस 18/5/62-एल; लोक सभा संसदीय समाचार (2), 2.5.1996 से तुलना कीजिए जिसमें लोक सभा के एक निर्वाचित सदस्य के स्थान को राज्य सभा में उसके निर्वाचन की तारीख अर्थात् 19.2.1996 से रिक्त घोषित किया गया था किन्तु राज्य सभा में उस सदस्य की पदावधि 10.4.1996 से आरंभ हुई

165. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 70; निर्वाचनों का संचालन नियम, 1961, नियम 91 के साथ पठित

166. राज्य सभा वाद-विवाद 15.12.1956, कालम 2545; 17.12.1956, कालम 2677

167. -वही- 21.3.1966, कालम 3885; 22.3.1966, कालम 3973

168. समसामयिक सदस्यता का प्रतिषेध नियम, 1950, नियम 2

169. अधिसूचना संख्या आर एस 10/86-टी, 24.4.1986, राजपत्र [I(i)], 24.4.1986

170. अधिसूचना संख्या आर एस 10/88-टी, 11.1.1988, राजपत्र [I(i)], 11.1.1988

171. अधिसूचना संख्या आर एस 10/89-टी, 27.12.1989, राजपत्र [I(i)], 27.12.1989

172. राज्य सभा वाद-विवाद, 17.11.1964, कालम 174-75; और 18.11.1964, कालम 330-31; राज्य सभा वाद-विवाद, 15.3.1988, कालम 217-22 भी **देखिये**

173. लो॰ प्र॰ अधिनियम, 1951, धारा 100(1)

174. -वही- धारा 107(1)

175. -वही- धारा 116ख(3)

176. ई एल आर, वोल्यूम 23, पृष्ठ 171

177. ई एल आर, वोल्यूम 26, पृष्ठ 396

178. फाइल सं॰ 24/74-टी

179. ई एल आर, वोल्यूम 65, पृष्ठ 285

180. संसदीय समाचार (2), 29.8.1991

180क. संसदीय समाचार (2), 27.7.2001

181. अनुच्छेद 102(1)

182. अनुच्छेद 101(4)

183. राज्य सभा वाद-विवाद, 22.3.1976, कालम 78-80

184. फाइल सं॰ 10/88-टी

185. संसदीय समाचार (1), 21.12.2000

186. संसदीय समाचार (1), 15.11.1976

187. अनुच्छेद 59(1)

188. अनुच्छेद 66(2)

189. अनुच्छेद 158(1)

190. अनुच्छेद 101(3)(क)

191. अनुच्छेद 101(3)(ख)

192. नियम 213(1)

193. नियम 213(2)

194. नियम 213(3)

195. नियम 213(4)

196. फाइल सं॰ आर एस 10/89-टी

196क. नियम 213(5)

197. -वही- स्पष्टीकरण

198. नियम 213(6)

199. राज्य सभा वाद-विवाद, 18.4.1955, कालम 4957

200. -वही- 17.8.1988, कालम 257-58

201. संसदीय समाचार (1), 19.4.1962

202. राज्य सभा वाद-विवाद, 10.4.1990, कालम 4

203. संसदीय समाचार (2), 22.4.1996

204. अनुच्छेद 106

205. संसद्-सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 9

206. -वही- धारा 3; 2006 के अधिनियम 40 द्वारा 14.9.2006 से प्रतिस्थापित

207. -वही- धारा 3, धारा 2(ङ) के साथ पठित

208. -वही- धारा 8 और संसद्-सदस्य (निर्वाचन-क्षेत्र भत्ता), नियम, 1986, नियम 2; भारत का राजपत्र,असाधारण ,भाग-2, खण्ड 3, उप खण्ड (i), दिनांक 12.12.2006 में प्रकाशित सा॰ का॰ नि॰ 750(अ) द्वारा प्रतिस्थापित

209. -वही- धारा 8 और संसद्-सदस्य (कार्यालय व्यय भत्ता) नियम, 1988, नियम 3; भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग-2, खण्ड 3, उप खण्ड (i), दिनांक 12.12.2006 में प्रकाशित सा॰ का॰ नि॰ 751(अ) द्वारा प्रतिस्थापित

210. -वही- धारा 3; 2006 के अधिनियम 40 द्वारा 14.9.2006 से प्रतिस्थापित

211. -वही- धारा (2) (घ)

212. -वही- धारा (3), परंतुक

213. -वही- धारा (2) (घ) (1)

214. -वही-

215. -वही- धारा 4(1)(क)

216. -वही- धारा 4(1)(ख)

217. -वही- धारा 4(1)(ग)(1)

218. -वही- धारा 4(1)(ग)(2) 2006 के अधिनियम 40 द्वारा 15.9.2006 से प्रतिस्थापित

219. -वही- धारा 4(1), दूसरा परंतुक

220. -वही- धारा 5, 1999 के अधिनियम 16 द्वारा 22.3.1999 से प्रतिस्थापित तथा 2006 के अधिनियम 40 द्वारा 15.9.2006 से प्रतिस्थापित

221. -वही-

222. -वही- धारा 7

223. -वही- धारा 5(1क) परंतुक

224. संसद् सदस्य (यात्रा तथा दैनिक भत्ता) नियम, 1957, नियम 14

225. संसद् सदस्य (विदेश यात्रा भत्ता) नियम, 1960

226. संसद् सदस्य वेतन, भत्ते और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 6

227. –वही– धारा 6ख

228. संसदीय समाचार (2), 21.2.1992

229. राज्य सभा के सदस्यों के लिए आवास तथा अन्य सुविधाओं संबंधी विवरणिका (1995), पृष्ठ 2

230. आवास तथा टेलीफोन सुविधाएं (संसद् सदस्य) नियम, 1956

231. –वही– धारा 4, परंतुक। भारत का राजपत्र, असाधारण, भाग–II, खण्ड 3, उप–खण्ड (i), दिनांक 25.10.2001 में प्रकाशित सा॰ का॰ नि॰ 803 (अ) द्वारा प्रतिस्थापित

232. –वही– धारा 4(5)

233. –वही– सा॰ का॰ नि॰ 803(अ) द्वारा प्रतिस्थापित

233क. संसदीय समाचार (2), 26.7.2006

234. चिकित्सा सुविधाएं (संसद् सदस्य) नियम, 1959

235. संसदीय समाचार (2), 31.3.1993

236. संसद् सदस्य वेतन, भत्ता और पेंशन अधिनियम, 1954, धारा 8(क); 2006 के अधिनियम 40 द्वारा 15.9.2006 से प्रतिस्थापित।